# रामचरितमानस में नारी

डॉ. सुशील कुमार शर्मा

# रामचरितमानस  में नारी

डॉ. सुशील कुमार शर्मा

हस्ताक्षर प्रकाशन

दिल्ली -110094

**ISBN** 978-81-88579-33-4

* डॉ. सुशील कुमार शर्मा

**मूल्य :** ₹ 300

**प्रथम संस्करण :** 2014

**प्रकाशक**

**हस्ताक्षर प्रकाशन**

7/1, ब्लाक-ए, प्रेम विहार, करावल नगर,

दिल्ली-110094

**शब्द-संयोजक :** प्रतिभा प्रिंटर्स, शाहदरा, दिल्ली-110032

**मुद्रक :** विकास कम्प्यूटर्स एण्ड प्रिंटर्स, ट्रोनिका सिटी, गाजियाबाद

RAMCHA RITMANAS MEIN by Dr. Sushil Kumar Sharma Price: Rs. 300.00

NARI

# भूमिका

नर और नारी के युगल रूप का कार्य-व्यापार सृष्टि का आभास कराता है, अकेला नर सृष्टि का नियंता नहीं हो सकता। नर, मात्र बीज-वपन करता है, परन्तु बीज वपन के लिए भी उसे आधार चाहिए। नारी यही आधार है। प्रकृति की अद्‌भुत कृति है-नारी।

नारी के सम्बन्ध में विश्व-साहित्य में जितना लिखा गया है, उतना अन्य किसी विषय पर नहीं लिखा गया। सहस्राधिक वर्षों से नारी के उभय पक्षों पर कवि और लेखकों की लेखनी अनवरत चल रही है। अनेकानेक उपमाओं और प्रतीकों से नारी को विश्लेषित किया गया है। परन्तु रचनाकारों और चिंतकों का एक वर्ग निष्कर्ष रूप में यह कथन करता हुआ मिलता है कि नारी के समुद्र जैसे अथाह चरित्र को परख लेना संभव नहीं है-

**त्रिया चरित्र, पुरुषस्य भाग्यं ।**

**देवो न जानाति, कुतौ मनुष्यः ।।**

उपर्युक्त सूत्र के संदर्भ और प्रसंग जो भी हों, पर इससे ध्वनित यही होता है कि नारी सदा से ही पुरुष के आकर्षण, विकर्षण, रहस्य और कौतूहल का केन्द्र रही है। नारी और नारी तत्व को जानने-समझने की जिज्ञासा पुरुष को सदैव रही है।

इतिहास के ज्ञात प्रारंभिक काल से लेकर अब तक नारी की स्थिति परिवर्तित होती रही है। वेद काल में ऋषियों ने वेद मंत्रों की ऋचाओं को जन्म दिया। इस सृजन-यात्रा में विश्वास, अपाला, उशिज, घोषा, लोपामुद्रा व ब्रह्मवादिनी जैसी नारियों ने भी मंत्र दृष्टा ऋषियों का साथ दिया। ऋग्वेद

के अनेक मंत्रों की दृष्टा ये ही नारियाँ हैं। वैदिक युग में नारी की स्थिति पुरुष से किसी भी रूप में कम नहीं थी।

वैदिक युग के पश्चात् उपनिषदों व आरण्यकों का युग आया। गार्गी, मैत्रेयी, कात्यायनी जैसी ज्ञाननिष्ठ महिलाएँ इस युग ने दीं। रामायण-महाभारत काल तक भी नारी की गरिमा श्रेष्ठ और पुरुष के समतुल्य बनी रही। वाल्मीकि रामायण के अयोध्याकांड के राम वन-गमन के एक प्रसंग में यह दर्शाया गया है कि जब श्रीराम वन-गमन के पूर्व माँ कौशल्या के महल में उनसे विदा होने गये, तब रेशमी वस्त्र धारण किये मंत्र वेत्ता कौशल्या यज्ञ कार्य में रत थीं-

**सा क्षौमवसना हृष्टा जित्यं व्रत परायणा।**

**अग्निं जुहोति स्म तदा मंत्रवित् मंगला ।।**

- अर्थात् मनुष्य के श्रेष्ठ कर्म यज्ञ में नारी की समान भागीदारी थी। पुरुष के समान नारी को अधिकार प्राप्त थे। ऐसी नारियों ने ही भारतीय नारी की परिभाषा को स्थिरता प्रदान की, उसके स्वरूप को गढ़ा।

समय के साथ-साथ नारी के स्वरूप में परिवर्तन होता गया। नर- नारी की समानता को अभिव्यक्त करने वाला अर्द्ध नारीश्वर का स्वरूप विकृत हुआ और पुरुष ने भोग्या तथा क्रीतदासी बनाकर उसे प्रतिबंधों की जंजीरों में जकड़ दिया। राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त ने अत्यंत सटीक लिखा है

**नर-कृत शास्त्रों के सब बंधन**

**हैं अबलाओं को लेकर।**

**अपने लिए सभी सुविधाएँ**

**पहले ही कर बैठे नर।।**

मध्यकाल तक आते-आते भारतीय नारी का उत्कृष्ट रूप विकृत होने लगा। देश में मुगलिया सल्तनत स्थापित थी। इससे पूर्व तुर्कों सहित अनेक आक्रांताओं ने भारतीय नारी की सुन्दर तस्वीर को विकृत किया। विश्व कवि गोस्वामी तुलसीदास का काल यही है। उनकी अमर कृति- 'रामचरितमानस' में भारतीय नारी के वैदिक रूप से लेकर मध्यकालीन नारी तक के विविध रूपों का चित्रण है। इतना ही नहीं, इस अमर ग्रंथ में नारी के भावी रूप संकेत भी उपलब्ध हैं। आवश्यकता है उन संकेतों को सूक्ष्म दृष्टि से परखने और विश्लेषित

करने की। डॉ. सुशील कुमार शर्मा ने अपनी प्रस्तुत कृति के द्वारा यह मौलिक कार्य किया है।

मेरी दृष्टि में 'रामचरितमानस,' लोक के लिए, लोक भाषा में सृजित प्रथम लोक वेद है। विश्व में जो भी है, वह 'रामचरितमानस' में है और जो 'रामचरितमानस' में नहीं है, वह विश्व में भी नहीं है, इसीलिए 'रामचरितमानस' विश्व काव्य भी है। वैदिक काल से लेकर भारतीय नारी की प्रगति-दुर्गति का अद्यतन इतिहास भी 'रामचरितमानस' में है। न केवल भारतीय नारी, अपितु विश्व नारी की गाथा भी इस महान ग्रंथ में गुंफित है। 'रामचरितमानस' के नारी पात्र अपने मूल गुण-धर्म को अभिव्यक्त करते हैं। जहाँ सीता भारतीय सुसंस्कारों की जीवंत प्रतिमा है, वहीं शूपर्णखा पाश्चात्य सभ्यता (भौगवाद) की प्रतीक है। नारी की नैसर्गिक दुर्बलता-संदेहादि-की अभिव्यक्ति यदि पार्वती के रूप में हुई है, तो स्वर्णादि की वांछा-हेम हिरण प्रसंग में निहित है। कौशल्या, कैकेई, सुमित्रा, मैना, शतरूपा, अनुसुइया, तारा, मंदोदरी, त्रिजटा, ताड़का, लंकिनी, सुरसा आदि अन्य अनेक नारी पात्र हैं, जो उसके सत और असत तथा सबलताओं और दुर्बलताओं के प्रतिरूप हैं। तुलसी ने नारी के गुणों का 'रामचरितमानस' में यत्र-तत्र प्रसंगानुसार वर्णन किया है, तो उसकी विवशता का कारुणिक प्रकटन भी किया है-

**नारिधरमु पति देउ न दूजा ।।**

x x x

**कत बिधि सृजीं नारि जग माहीं।**

**पराधीन सपनेहुँ सुखु नाहीं।।**

इस 'पराधीनता' में स्पष्ट रूप से मनु महाराज का वह चिंतन ध्वनित है, जिसमें कहा गया है कि स्त्री को बचपन में पिता के, युवावस्था में पति के तथा वृद्धावस्था में पुत्र के अधीन (उनके नियंत्रण में) रहना चाहिए। 'रामचरितमानस' के अरण्यकांड में अनुसूया, सीता को नारी-धर्म का उपदेश देती हुई कहती हैं-

**मातु पिता भ्राता हितकारी।**

**मितप्रद सब सुनु राजकुमारी ।।**

**अमित दानि भर्ता बयदेही ।**

**अधम सो नारि जो सेव न तेही ।।**

धीरज धर्म मित्र अरु नारी।

आपद काल परिखिअहिं चारी ।।

बृद्ध रोगबस जड़ धनहीना।

अंध बधिर क्रोधी अति दीना ।।

ऐसेहु पति कर किएँ अपमाना।

नारि पाव जमपुर दुख नाना ।।

एकइ धर्म एक ब्रत नेमा।

कायँ बचन मन पति पद प्रेमा ।।

जग पतिब्रता चारि बिधि अहहीं।

बेद पुरान संत सब कहहीं।।

उत्तम के अस बस मन माहीं।

सपनेहुँ आन पुरुष जग नाहीं ।।

मध्यम परपति देखइ कैसें।

भ्राता पिता पुत्र निज जैसें ।।

धर्म बिचारि समुझि कुल रहई।

सो निकिष्ट त्रिय श्रुति अस कहई।।

बिनु अवसर भय तें रह जोई।

जानेहु अधम नारि जग सोई।।

पति बंचक पर पति रति करई।

रौरव नरक कल्प सत परई ।।

छन सुख लागि जनम सत कोटी।

दुख न समझ तेहि सम को खोटी ।।

बिनु श्रम नारि परम गति लहई।

पतिब्रत धर्म छाड़ि छल गहई ।।

पति प्रतिकूल जनम जहँ जाई।

बिधवा होय पाइ तरुनाई।।

उपर्युक्त नारी धर्म आज के बुद्धिवादी और नारी-विमर्श के युग में

[8]

रूढ़िवादी, परंपरागत तथा अस्वीकार्य हो सकता है, परंतु इसके गहन, सूक्ष्म और तात्विक विवेचन से प्राप्त निष्कर्ष सहज ही सर्व स्वीकार्य होंगे।

'रामचरितमानस' के सुंदरकाण्ड की एक चौपाई की अर्द्धली ढोल-गँवार- शूद्र-पशु-नारी से तुलसी शूद्र और नारी के शत्रु बन गये। पक्ष और विपक्ष में बहुत कुछ लिखा भी गया और कहा भी गया। इस तथ्य से इंकार नहीं किया जा सकता कि 'रामचरितमानस' के अनेक स्थल और प्रसंग आज के चौखटे में 'फिट' नहीं बैठते, पर प्रत्येक रचनाकार अपनी रचनाओं में अपने युग का साक्षात्कार कराता है। तुलसीदास इसके अपवाद नहीं हैं, फिर भी वे अपने युग से बहुत आगे थे।

तुलसीदास के नारी-विषयक दृष्टिकोण पर पर्याप्त सामग्री प्रकाश में आयी है और इससे नये-नये तथ्य उद्घाटित हुए हैं। इसी सामग्री की श्रृंखला में डॉ. सुशील कुमार शर्मा की प्रस्तुत कृति की उपादेयता को परखा जाना चाहिए। मुझे विश्वास है कि तुलसी-साहित्य के अध्येताओं तथा अनुसंधित्सुओं के द्वारा इस कृति का स्वागत किया जाएगा।

**- डॉ. लखन लाल खरे**

विभागाध्यक्ष (हिन्दी)

शासकीय महाविद्यालय, करैरा

(शिवपुरी) म. प्र.

## अपनी बात

कुछ वर्षों पूर्व देश की चेतना पर एक प्रश्न चस्पा किया गया था कि क्या तुलसी नारी विरोधी थे ? समूचे राष्ट्र का प्रतिबद्ध बौद्धिक वर्ग इस बहस में उलझ गया था। सबके अपने-अपने तर्क थे, अपने-अपने प्रमाण थे। इस घटना ने कई दिनों तक मेरे मानस को उद्वेलित रखा। मेरा मन-मस्तिष्क यह स्वीकार नहीं कर पा रहा था कि जिसके इष्ट और आराध्य सीतापति हों, वह नारी विरोधी हो सकता है। बचपन से ही तुलसी मेरे प्रिय कवि और उनका 'रामचरितमानस' मेरा सर्व प्रिय ग्रंथ रहा है। हो सकता है, मेरी श्रद्धा मेरे श्रद्धेय पर लगाये गये आरोपों से व्यथित हुई हो। कारण जो भी हो, पर मैं अनायास ही तुलसी के नारी विषयक दृष्टिकोण को परखने के लिए उद्यत हो उठा। इस हेतु मैंने खोज-खोजकर अधिक-से-अधिक तुलसी व उन पर लिखा गया आलोचनात्मक साहित्य का अध्ययन किया। प्रस्तुत कृति इसी अध्ययन और मनन का प्रतिफल है। यह फल कच्चा रहा, गदरा गया अथवा परिपक्व हुआ इसका निर्णय तो सुधी पाठक ही करेंगे।

मैंने अपनी प्रस्तुत कृति में जिन विद्वानों की कृतियों के उद्धरण दिये हैं, उनके प्रति हृदय की गहराइयों से आभार व्यक्त करता हूँ। पुस्तक के भूमिका लेखक डॉ. लखन लाल खरे तुलसी-साहित्य के मर्मज्ञ हैं। भूमिका लिखकर उन्होंने इस कृति के महत्त्व को बढ़ाया मैं उनके प्रति कृतज्ञ हूँ।

मैं अपने भाई विनोद कुमार शर्मा और भाभी (श्रीमती) उर्मिला शर्मा के प्रति भी कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ। मैं गुरुवर डॉ. पूरनचंद टंडन के प्रति भी आभार व्यक्त करता हूँ। पत्नी डॉ. शशिबाला शर्मा के सहयोग के लिए भी मैं उनका आभार व्यक्त करता हूँ। सुपुत्री सुकृति एवं सुपुत्र उत्कर्ष ने जो सहयोग दिया उसे भुलाना मेरे लिए असंभव है। उनके सहयोग से ही प्रस्तुत कृति प्रकाशन में आ सकी है।

पाठकीय प्रतिक्रियाओं की मुझे प्रतीक्षा रहेगी।

**- डॉ. सुशील कुमार शर्मा**

**अनुक्रमणिका**

**भूमिका** 5

**अपनी बात** 11

**प्रथम अध्याय-तुलसीदास का व्यक्तित्व** 15

(क) जन्म-तिथि

(ख) जन्म-स्थान

(ग) नामकरण

(घ) माता-पिता

(ड.) जाति

(च) गुरु एवं शिक्षा-दीक्षा

(छ) बाल्यावस्था

(ज) वैवाहिक जीवन

(झ) गृह-त्याग के पश्चात्

(ञ) अवसान के पूर्व का परिदृश्य

(ट) अवसान

(ठ) कवि के व्यक्तित्व का समग्र मूल्यांकन

**द्वितीय अध्याय-तुलसीदास का कृतित्व** 34

(क) अप्रामाणिक रचनाएँ

(ख) अर्द्धप्रामाणिक रचनाएँ

(ग) प्रामाणिक रचनाएँ

**(अ) बहुसम्मत प्रामाणिक रचनाएँ**

(1) वैराग्य सांदीपनि

(2) रामलला नहछू

(3) रामाज्ञा प्रश्न

**(आ) सर्वसम्मत प्रामाणिक रचनाएँ**

(1) जानकी मंगल

(2) पार्वती मंगल

(3) कृष्णा-गीतावली

(4) गीतावली

(5) विनय-पत्रिका

(6) दोहावली

(7) बरवै रामायण

(8) कवितावली-हनुमान बाहुक

(9) रामचरित मानस

(घ) मानस का रचनाकाल

(ङ.) मानस लेखन का क्रम

(च) तुलसी समग्र की काल क्रमानुसार सूची

**तृतीय अध्याय-युगीन परिदृश्य और नारी की स्थिति** 57

(क) राजनीतिक परिदृश्य

(ख) सामाजिक परिदृश्य

(ग) धार्मिक परिदृश्य

(घ) साहित्यिक परिदृश्य

(ङ.) सांस्कृतिक परिदृश्य

(च) युगीन परिदृश्य में नारी की स्थिति

**चतुर्थ अध्याय-तुलसी की दृष्टि और मानस के नारी-पात्र** 81

(क) मानस के नारी पात्र

(ख) तुलसी की दृष्टि में नारी-धर्म

(ग) तुलसी और नारी-निंदा

(घ) तुलसी का नारी-निंदा विरोधी पक्ष

(ङ.) ढोल गँवार शूद्र पशु नारी

**पंचम अध्याय-मानस में नारी के विविध रूप** 107

(क) मानस के विविध प्रसंग और नारी (ख) नारी प्रताड़क : तुलसी की दृष्टि में (ग) अंततः

## प्रथम अध्याय

# तुलसीदास का व्यक्तित्व

किसी रचना की मूल संवेदना तब तक ग्राह्य नहीं हो सकती, जब तक उसके व्यक्तित्व को पूरा न पढ़ा जाए। ।। व्यक्ति का व्यक्तित्व उसकी रचना में किसी न किसी रूप में गुंफित रहता है। इसीलिए यह आवश्यक है कि रचनाकार की रचना का विश्लेषण करने के पूर्व उसके सर्वांग व्यक्तित्व को विश्लेषित किया जाए।

मध्यकाल के कवियों-विशेष रूप से भक्त कवियों के साथ यह कठिनाई रही है कि उनका प्रामाणिक जीवन-वृत्त उपलब्ध नहीं है। इसका कारण है कि इन कवियों की दृष्टि अपने कर्म पर केन्द्रित रही है। आत्म-प्रशंसा और स्वयं के परिचय प्रकाश से ये सदैव उदासीन रहे। यही कारण है कि उपलब्ध सामग्री के आधार पर जो अनुमान किया गया, वही उनका परिचय बन गया। तुलसीदास जी के साथ भी ऐसा ही हुआ है।

**(क) जन्म-तिथि**

विभिन्न विद्वानों ने तुलसी के जन्म की जो तिथियाँ निर्धारित की हैं, वे छह हैं-संवत् 1554, संवत् 1560, संवत् 1568, संवत् 1583, संवत् 1589 और संवत् 1600। इनमें प्रथम और अंतिम संवत् के मध्य सीधे-सीधे 46 वर्ष का विशाल अन्तर है। 'मूल गोसाईं चरित' और 'मानस मयंक के आधार पर तुलसी का जन्म संवत् 1554 है-

**पन्द्रह सौ चउवन विषै, कालिंदी के तीर।**

**सावन शुक्ला सप्तमी तुलसी धरेउ सरीर।।**

डॉ. माताप्रसाद गुप्त का मत है कि उपर्युक्त संवत गणना करने पर तिथियों की दृष्टि से सही नहीं है।

'राम मुक्तावली ग्रंथ के आधार पर श्री जगमोहन लाल वर्मा तुलसी का

जन्म संवत् 1560 स्वीकार करते हैं। परंतु एक तो उक्त ग्रंथ तुलसी द्वारा प्रणीत नहीं है, दूसरे, इस ग्रंथ की जिस पंक्ति के आधार पर यह निष्कर्ष प्राप्त किया गया है, वह शुद्ध और स्पष्ट अर्थ प्रदान नहीं करता। वह पंक्ति है-

**पवन तनय मो सन कह्यो पाँच बीस अरु बीस।**

इस पंक्ति के आधार पर यह अनुमान लगाया गया कि तुलसीदास जी पाँच बीस (5×20=100) और 20 अर्थात् 120 वर्ष की अवस्था तक विद्यमान रहे। इस दृष्टि से इनका जन्म संवत् (अवसान संवत 1680 में से 120 घटाने पर) 1560 बैठता है।

संवत् 1568 को तुलसी का जन्म संवत मानने वाले' तुलसी प्रकाश' के लेखक अविनाश राय द्वारा उद्‌धृत दोहा यह है-

**राम राम सागर मही तक सित सावन मास ।**

**रवि तिथि भृगु दिन दुतिय पद नषद विषाखा वास ।।**

उपर्युक्त दोहे का आशय है कि शक संवत 1433, श्रावण शुक्ल सप्तमी शुक्रवार अर्थात् सन् 1511 अथवा संवत् 1568 में कवि का जन्म हुआ था। इस संवत् के पक्ष में तीन तर्क किये गये हैं- प्रथम-गणना करने पर यह तिथि सही बैठती है। द्वितीय-उक्त तिथियों के आधार पर बन सकने वाली तीन कुंडलियों में से एक तुलसी के जीवन पर आधृत हो सकती है। तृतीय-सोरों सामग्री के आधार पर तुलसी ने 36 वर्ष की अवस्था में गृह त्याग व 63 वर्ष की अवस्था में (संवत् 1631 में) 'मानस' का लेखन प्रारंभ किया था।

परंतु तार्किक दृष्टि से संवत् 1568 को तुलसी का जन्म संवत् मानने वालों में शिवसिंह सेंगर प्रमुख हैं। शिवसिंह सरोज में वे लिखते हैं-"यह महाराज संवत् 1583 के लगभग उत्पन्न हुए थे।" परंतु इस 'लगभग' संवत् का सेंगरजी ने कोई पुष्ट प्रमाण नहीं दिया। डॉ. रामदत्त भारद्वाज का मत है कि "सेंगरजी ने अपनी सूचना का आधार 'गोसाई चरित' से लिया है और उससे एक उद्धरण दिया है। 'गोसाई चरित' में तो 1554 वि. सं. दिया है। अतः इसका उल्लेख न करके उन्होंने 1583 विक्रमी का उल्लेख क्यों किया ? हो सकता है कि उन्होंने 1554 विक्रमी को उचित न समझकर उसे त्याग दिया हो। यह भी हो सकता है कि उनके सामने गोसाई चरित' का कोई पुराना संस्करण रहा हो जिसमें जन्म संवत् का कोई उल्लेख नहीं किया गया हो।"8

संवत् 1589 का आधार 'घट रामायण' है। पंडित रामगुलाम द्विवेदी,

तुलसी की शिष्य परंपरा के प्रसिद्ध रामायणी रहे हैं। ये भी तुलसी का आविर्भाव काल संवत् 1589 ही मानते हैं। जार्ज ग्रियर्सन भी इसी मत के समर्थक हैं। 10

अंतिम मत है संवत् 1600 का। इस मत के समर्थक विल्सन महोदय और गार्सा द तॉसी हैं। इन्होंने 'संवत् सोलह सौ इकतीस' का यह भ्रामक अर्थ निकाला कि तुलसी ने इकतीस वर्ष की अवस्था में 'रामचरितमानस' लिखना प्रारंभ किया।" डॉ. माताप्रसाद गुप्त इस तिथि को असमीचीन मानते हुए कहते हैं कि-" 'रामचरितमानस' जैसे अत्यंत विद्वता पूर्ण एवं गहन ग्रंथ का निर्माण इकतीस वर्ष की आयु में संभव नहीं है।"12 यह अलग बात है कि डॉ. गुप्त का यह तर्क भी ग्राह्य नहीं हो सकता क्योंकि ज्ञान प्राप्ति की कोई उम्र नहीं होती है- विशेष रूप से ईश्वर प्रदत्त उपहार के प्रकरणों में।

इन मतभेदों का अभी भी पटाक्षेप नहीं हुआ है, परंतु अब प्रायः समस्त विद्वान तुलसी का जन्म संवत् 1589 (सन् 1532) मानने लगे हैं।

**(ख) जन्म-स्थान**

जन्म संवत् की भाँति तुलसी का जन्म स्थान भी विवादित है। पहले दो स्थान सोरों तथा राजापुर ही तुलसी की जन्म स्थली के रूप में थे, पर अब इस सूची में अवध, अयोध्या, काशी, हस्तिनापुर, रामपुर तथा तारी-ग्राम भी जुड़ गये हैं। परंतु शेष स्थानों की अपेक्षा राजापुर और सोरों ही विवाद के केन्द्र में प्रमुख रूप से हैं।

राजापुर के पक्ष में राजापुर निवासी पं. रामबहोरी शुक्ल ने प्रथमतः ध्यान आकृष्ट कराते हुए 'वीणा' में विस्तार से सप्रमाण लिखा। 13 इनके अनुसार शिवसिंह सेंगर, पं. रामगुलाम द्विवेदी आदि विद्वानों ने राजापुर को ही तुलसी की जन्म भूमि माना है। संवत् 1820 से संवत् 1900 के मध्य हुए संत तुलसी साहिब स्वयं को तुलसीदास का अवतार मानते थे। उन्होंने भी अपनी 'घट रामायण' में अपना पहला चोला राजापुर में ही उत्पन्न होना लिखा है। 'वीणा' में प्रकाशित लेख के अनुसार-

1. राजापुर में उपाध्याय सरयू पारीय ब्राह्मणों के वंश के लोग स्वयं को तुलसी के शिष्य श्रीगणपति उपाध्याय का वंशज मानते हैं। इन्हें राजापुर तथा नया गाँव में मुआफी मिली हुई है। ये लोग इस मुआफी को सम्राट अकबर की दी हुई मानते हैं। इस वंश के पास अब भी 'मानस' के अयोध्याकाण्ड की एक अति प्राचीन प्रति है, जिसे वे तुलसीजी के द्वारा लिखी बताते हैं। पन्ना के महाराज हिन्दूपत की एक सनद भी इस परिवार के पास अब भी है। सनद

की भाषा इस प्रकार है- "श्री महाराजाधिराज श्री महाराजा श्री राजा हिन्दूपतजूदेवः ते पंडित श्री उपाध्याय शिवाराम को सनधि कर दई पुरानी सनधि पर हुकूम अवर कसबा राजापुर मौ आगे ये उहा की राह रकम हाट पैट में पाई उगय होय सो बहाल है हर हमेस पाए कोउ आमिल मैमार जमींदार मुज्तहिम न होइ हुकूम हजूर फागुन सुदि 3 संवत 1813 मुकाम परना।"

2. एक सनद और भी इसी परिवार के पास है, जो वंशानुगत चली आ रही है। यह सनद एक कागज के रूप में है जो अत्यंत जीर्ण-शीर्ण है। सनद की लिपि उर्दू है। परंतु अनेक जगह से अक्षर मिट जाने के कारण वह अस्पष्ट है। इन अस्पष्ट स्थलों का अनुमान के आधार पर जोड़ने से निम्नानुसार भाषा बनती है-

"अमिलान हाल इस्तकबाल पर गनइ गहोरा सिरक कालिंजर सूबे इलाहाबाद के आगे (पंडित) मदारीलाल (गोसाई) तुलसीदास के (ब) समै का महसूल सइर वा तिहवा जीवा का लासीवा गुजर श्री जमुना जी राजापुर अमले पर बामूजब सनद बादशाही व सूबेदारान ब राजा बुन्देलखण्ड है सो सिरकार में हाल है सो हसब मुवायन के अमल सौं मुजाहिम ना हूजै हर साल नई सन (द) भा गयौ। ता. 21 सावना (1) सन् (संब) - 12 सन् 1719 बमुकाम बांदा।"

उपर्युक्त सनद पर एक ओर जिला मजिस्ट्रेट के हस्ताक्षर हैं जो धूमिलता के कारण अस्पष्ट हैं। ऊपर लिखा हुआ-हुकूम हुआ-27 दिसंबर सन् 1841 ।"

इस सनद में जो तिथियाँ और संवत् दिये हुए हैं उनमें यद्यपि पर्याप्त भेद हैं। फिर भी तुलसी के राजापुर से संबंध होने को सहसा ही अस्वीकृत नहीं किया जा सकता।

3. राजापुर में संकट मोचन हनुमान का एक अति प्राचीन मंदिर है। ऐसा माना जाता है कि यह तुलसी के द्वारा ही स्थापित हुआ था।

4. जिस कच्चे मकान में तुलसी रहते थे उसी में उनकी मूर्ति स्थापित है।

उपर्युक्त समस्त साक्ष्य तुलसी की जन्म स्थली राजापुर में सिद्ध करते हैं।

**सोरों का पक्ष-** सोरोंजी अथवा सूकर क्षेत्र भी उत्तर प्रदेश के एटा जिले में स्थित है। तुलसी के जीवन वृत्त से संबंधित जो जानकारी यहाँ से प्राप्त हुई है, वह सिद्ध करती है कि तुलसी की जन्म स्थली सोरों है। इस सामग्री के अतिरिक्त 'रामचरितमानस' का यह दोहा है, जिसमें तुलसी कहते हैं कि बालपन में मैंने गुरु से श्रीराम कथा श्रवण की थी, पर समझ में इसलिए न आ सकी कि मैं उस समय अचेत (अबोध) था-

**मैं पुनि निज गुर सन सुनी कथा सो सूकरखेत।**

**समुझि नहीं तसि बालपन तब अति रहेउँ अचेत ।।**

पंडित रामनरेश त्रिपाठी ने इस दोहे पर प्रश्न किया कि जब तुलसी 'अति अचेत' थे, तब सोरों पहुंचे कैसे ? और स्वयं ही उसका समाधान करते हुए लिखते हैं-मुझे निश्चय हो गया है कि तुलसीदास का जन्म स्थान सोरों ही है। वहीं उन्होंने सर्वप्रथम रामकथा सुनी थी। 15

अनेक विद्वानों ने अंतः साक्ष्य और बहिर्साक्ष्य के आधार पर तुलसी का जन्म-स्थान सोरों ठहराने का प्रयास किया है। 'सूकर क्षेत्र माहात्म्य भाषा, मुरलीधर कृत 'छप्पय', 'रत्नावली चरित', 'दोहारत्नावली', 'भ्रमरगीत की पुष्पिका, 'तुलसी प्रकाश' आदि प्राच्य ग्रंथों के आधार पर तुलसी का जन्म सोरों के योग मार्ग मोहल्ले में अथवा सूकर क्षेत्र के अंतर्गत रामपुर गाँव में हुआ था। रामपुर गाँव से थोड़ी-सी दूरी पर 'तारी' ग्राम में उनकी ननिहाल थी और यहाँ से कुछ दूरी पर स्थित 'बदरिया' ग्राम में तुलसी की ससुराल थी। सोरों में ही गुरु नरसिंह की पाठशाला में तुलसी ने विद्याध्ययन किया। गृहस्थ होकर भी ये सोरों में ही रहे। इस मत के पक्षधर रामपुर, बदरिया, तारी ग्राम, नृसिंह मंदिर, तुलसी का गृह स्थान, सीताराम मंदिर, नृसिंह तथा नंददास के वंशजों और अनेक जनश्रुतियों का संदर्भ अपने समर्थन में देते हैं।

डॉ. रामदत्त भारद्वाज साधिकार कहते हैं कि "यदि एटा व बदायूँ जिलों से प्राप्त सोरों सामग्री को एक ओर रख दिया जाये तब भी ऐसी प्रचुर सामग्री भारत के विभिन्न कोनों में उपलब्ध हैं जो सोरों सामग्री का समर्थन करती हैं। जैसे-

1. अष्टछाप के प्रमुख कवि नन्ददास को तुलसी का छोटा भाई बताया गया है, जो सनाढ्य सुकुल ब्राह्मण थे।

2. प्रियादास कृत 'भक्तमाल टीका' (संवत् 1769) पर लिखित 'भक्ति रस बोधिनी (संवत् 1894) में सेवादास ने कहा है कि तुलसीदास भादों की अर्धरात्रि में अपनी पत्नी रत्नावली से मिलने गंगा पार कर बदरी ग्राम गये थे।

3. श्री अष्टछाप की वार्ता में भी उल्लेख है कि नंददास सनाढ्य ब्राह्मण रामपुर निवासी और तुलसीदास के छोटे भाई थे।

4. गोकुलनाथ के 'वचनामृतों से स्पष्ट है कि जब नंददास, बिट्ठलनाथ के सेवक बने थे, तब तुलसीदास ने उनसे मतभेद प्रकट किया था।

5. 'बावन वचनामृत' और दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता में भी नन्ददास

को तुलसी का छोटा भाई तथा रामपुर निवासी बताया गया है। 16

**भाषा-सम्बन्धी साक्ष्य-** पं. रामनरेश त्रिपाठी का मत है कि तुलसी के काव्य में ऐसे अनेक मुहावरे व शब्द व्यवहृत हुए हैं जिनका प्रयोग सोरों क्षेत्र में ही होता है। जैसे-तायो, 'ओर को, भौरा चकडोरि, 'कुटिल कीट', 'तिजरा को सो टोटक' आदि। 'तायों' का अर्थ है- 'जाँचना'। सोरों क्षेत्र में आज भी जाँचने व गरम करने के अर्थ में यह शब्द प्रयुक्त होता है। सोरों क्षेत्र में 'ओर को का अर्थ होता है-अंत का।

**निष्कर्षतः** तुलसी साहित्य में तमाम स्थानों का नामोल्लेख हुआ है। परंतु यह आश्चर्यजनक तथ्य है कि उनके जन्म स्थान के दो प्रबलतम दावेदार-राजापुर और रामपुर (सोरों) का कोई उल्लेख नहीं है। इसी से उनका जन्म स्थान इतना विवादित है कि मात्र अनुमानों का ही सहारा लेना पड़ता है। यद्यपि सोरों और राजापुर- दोनों स्थानों के पक्ष में इतनी प्रामाणिक, पुष्ट और प्रचुर अंतः तथा बहिर्साक्ष्य सामग्री है कि दोनों स्थलों के दावों को झुठलाया या अनदेखा नहीं किया जा सकता। अनेक विद्वानों ने तो यहाँ तक संबंध स्थापित किया है कि तुलसी के पूर्वज सोरों क्षेत्र के निवासी थे, जो कालांतर में राजापुर जाकर बस गये थे। इस तथ्य को स्वीकार भी यदि कर लिया जाये तो प्रश्न फिर उपस्थित होता है कि तुलसी का जन्म कहाँ हुआ था ?- सोरों अथवा राजापुर ? यह प्रश्न आज भी अनुत्तरित है और संभवतः भविष्य में भी रहेगा।

**(ग) नामकरण**

जन्म तिथि व जन्म-स्थान के पश्चात् तुलसी के साथ तीसरा विवाद उनके नामकरण का है। 'तुलसीचरित' में रघुवरदास का मत है कि मुरारी मिश्र के कुलगुरु तुलसीदास ने उनके पुत्र का नामकरण तुलाराम किया तथा प्रेम वश उन्हें तुलसी कहा। यही तुलाराम आगे चलकर तुलसीदास हुए। वेणीमाधवदास ने 'मूल गोसाईं चरित' में लिखा है कि शिव की प्रेरणा से नरहर्यानन्द हरिपुर पहुँचे तब उन्होंने बालक को रामबोला कहकर संबोधित किया। श्री अविनाश राय ने 'तुलसी प्रकाश' में लिखा है कि इनकी माता हुलसी विष्णु भक्त थीं और नियमित रूप से तुलसी की पूजा किया करती थीं, इसीलिए उनके गुरु ने बालक का नामकरण तुलसी किया।

निःसहाय हो जाने पर तुलसी भिक्षा माँगने लगे, तब लोग उन्हें रामबोला कहने लगे।

एक अन्य जनश्रुति के आधार पर तुलसी ने जन्म लेते ही रुदन के स्थान

पर राम नाम का उच्चारण किया, जिससे इनका नामकरण रामबोला पड़ा। इनकी कृतियों में भी ऐसा उल्लेख प्राप्त होता है-

**1.राम को गुलाम न राम बोला राख्यो नाम,**

**काम यहै नाम है हौं कबहूँ कहत हो।। - (विनय-पत्रिका)**

**2. साहिब सुजान जिन नाम हू को पक्ष कियो,**

**राम बोला नाम हौ गुलाम राम साहि कौ।। - (कवितावली)**

**3.केहि गिनती मह गिनती जस बन घास।**

**राम जपत भै तुलसी तुलसीदास ।। - (बरवै रामायण)**

**4. राम नाम को कलपतरु कलि कल्यान निवास,**

**सो सुमिरत भओ माँगते तुलसी तुलसीदास ।। - (दोहावली)**

अतः यह सिद्ध है कि इनका मूल नाम रामबोला था, जो कालान्तर में किन्हीं कारणों से ही तुलसी हुआ।

**(घ) माता-पिता**

तुलसी की माता का नाम हुलसी था। हुलसी के अतिरिक्त अन्य कोई
नाम सम्मुख नहीं आया। अंतः साक्ष्य भी इस नाम की पुष्टि करते हैं-

**रामहिं प्रिय पावनि तुलसी सी।**

**तुलसिदास हित हियँ हुलसी सी ।। (बालकाण्ड 30/6)**

रहीम ने एक प्रसंग में हुलसी को तुलसी की माँ बताया है-

**सुरतिय नरतिय नागतिय सब चाहत अस होय।**

**गोद लिये हुलसी फिरै तुलसी सो सुत होय ।।**

परन्तु तुलसी के पिता के नाम में कुछ मतभेद है। सोरों से प्राप्त सामग्री के अनुसार तुलसी के पिता का नाम आत्माराम शुक्ल बताया गया है। राजापुर पक्ष इनका नाम आत्माराम दुबे बताता है। रघुवरदास इनके पिता का नाम मुरारी मिश्र बतलाते हैं तो भविष्यपुराण में तुलसी का पिता अनूप शर्मा को बतलाया गया है। परन्तु परम्परा इनके पिता का नामकरण आत्माराम दुबे को ही मान्यता प्रदान करती है।

**(ड.) जाति**

यद्यपि महापुरुषों की कोई जाति नहीं होती फिर भी जाति प्रथा में जकड़ा भारतीय समाज किसी महापुरुष का अपनी जाति में जन्म लेने को गौरवान्वित समझता है। तुलसी ब्राह्मण कुलोत्पन्न थे-यह तो निर्विवाद है। विवाद है तो केवल यह कि वे सरयूपारीय थे अथवा कान्यकुब्ज।

पं. सुधाकर द्विवेदी का अनुसरण करते हुए सर जार्ज ग्रियर्सन महोदय का मत है कि-तुलसीदास सरयूपारी ब्राह्मण थे, कान्यकुब्ज नहीं। क्योंकि कान्यकुब्ज ब्राह्मण दान लेना, भिक्षा याचना आदि वर्जित मानते हैं। कवि ने स्वयं कवितावली में कहा है कि-'जायो कुल मंगन' (उत्तर 37) कहा है। "17 सरयूपारी ब्राह्मण के पक्ष में एक जनश्रुति यह भी है-

**तुलसी परासर गोत दुबे पत्यौंजा के।**

सोरों जन्म स्थान के समर्थकों का मानना है कि तुलसीदास सनाढ्य थे और वे 'शुक्ल गोत्र के थे। विनयपत्रिका की निम्न लिखित पंक्ति वे अपने कथन के समर्थन में उद्धृत करते हैं-

**दियो सुकुल जनम सरीर सुन्दर हेतु फल चारि को। - (विनय-पत्रिका-135)**

राजापुर तथा आसपास की बस्तियों में रहने वाले ब्राह्मणों से पता लगाकर मिश्रबंधु अपना मत स्थिर करते हुए कहते हैं कि वहाँ पर कान्यकुब्ज द्विवेदियों की बस्ती है, सरयूपारी ब्राह्मणों की नहीं। इसलिए इस बात की संभावना विशेष है कि तुलसी कान्यकुब्ज थे, सरयूपारी नहीं।

तथ्य जो भी हो, परंतु यह निश्चित है कि तुलसीदासजी ब्राह्मणकुलोद् भूत थे। उनका विवाद यहाँ भी कान्यकुब्ज और सरयूपारी के मध्य है।

**(च) गुरु एवं शिक्षा-दीक्षा**

राघवानन्द, जगन्नाथदास, शेष सनातन, नरसिंह और नरहरि-ये पाँच नाम ऐसे हैं जो मानसकार के गुरु के रूप में लिये जाते हैं। बिना किसी साक्ष्य के 'भविष्यपुराण तथा अंग्रेज विद्वान विल्सन ने क्रमशः राघवनानन्द तथा जगन्नाथदास को तुलसी का गुरु कहा है। 'मूल गोसाईं चरित' शेषसनातन को यह पद प्रदान करता है। पर यह संदिग्ध है। 'रामचरितमानस' में 'कृपासिंधु नररूप हरि (बाल. सोरठा 5) के आधार पर नरहर्यानन्द और नरसिंह नामों को तुलसी के गुरु के रूप में ग्रहण किया गया है। इतना ही नहीं मानस में ही तुलसी अपने गुरु के सम्बन्ध में स्पष्ट उद्घोषणा करते हैं कि बालपन में अपने

गुरु से सूकर क्षेत्र में रामकथा श्रवण की थी उस समय वे अबोध थे-

**मैं पुनि निज गुर सन सुनी कथा सो सूकरखेत,**

**समुझी नहिं तसि बालपन तब अति रहेउँ अचेत**

X X X

**तदपि कही गुर बारहिं बारा।**

**समुझि परी कछु मति अनुसारा ।।**

**भाषाबद्ध करबि मैं सोई।**

**मोरें मन प्रबोध जेहिं होई।19**

सूकर क्षेत्र (सोरों) और नरसिंह में संबंध स्थापित करते हुए डॉ. भगवती प्रसाद सिंह कहते हैं कि- "उक्त सूकर खेत में वाराह मंदिर है। मंदिर से लगभग दो सौ गज की दूरी पर नरसिंह कुटी है। उनकी शिष्य परंपरा में आठवीं पीढ़ी में इस समय (संवत् 1900 में) रामअवधदास महंत हैं।

सोरों सामग्री के अनुसार तुलसी के गुरु नरसिंह (या नृसिंह) थे। सोरों में वर्तमान में स्थित नृसिंह मंदिर में ही उनकी पाठशाला थी। इसी पाठशाला में तुलसी ने अपने अनुज नन्ददास सहित अध्ययन किया था। भिक्षाटन करते हुए बालक तुलसी को गुरु नृसिंह अपने साथ पाठशाला लाये और यहीं उनको विद्याध्ययन की व्यवस्था करवायी। यहीं पर तुलसी ने वेद-शास्त्र, ज्योतिष, काव्यांग, पुराणादि का गहन अध्ययन किया।

'मूल गोसाईं चरित' के अनुसार- "रामगिरि के नरहरि स्वामी (नरहर्यानन्द) शिवजी की प्रेरणा से हरिपुर आये और रामबोला को अपने साथ लेकर अयोध्या चले गये। नरहरि स्वामी ने रामबोला का पंच संस्कार कर उसे राम मंत्र दिया तथा विद्याध्ययन कराने लगे। दस माह पश्चात् स्वामीजी रामबोला के साथ सरयू घाघरा के संगम के निकट स्थित सूकरखेत चले आये। यहाँ ये पाँच वर्ष रहे। जब तुलसी अध्ययन में पारंगत हो गये तब गुरु ने उन्हें बार-बार रामकथा सुनायी और समझायी। बालक रामबोला ने तत्व ग्रहण किया। इसके पश्चात् गुरु शिष्य काशी आये। यहाँ आचार्य शेष सनातन के आग्रह पर स्वामी नरहर्यानंद ने तुलसी को उन्हें सौंप दिया। शेष सनातन ने तुलसी को सभी विद्याओं में पारंगत बना दिया।

डॉ. माताप्रसाद गुप्त लिखते हैं कि- "नरहरि अथवा इसके पर्यायवाची नामों के महात्मा तुलसीदास के साथ में तथा कुछ इनसे पूर्व में मिलते हैं। अकेले नाभादास ने ही छह संतों का उल्लेख किया है और इनमें तीन तो रामानंद की शिष्य परंपरा में ही हुए थे। इससे ज्ञात होता है कि नरहरि उस

समय का एक बहुप्रचलित नाम था। फलतः 'नररूप हरि से किन्हीं 'नरहरि या नरसिंह, नामक तुलसीदास के गुरु का संकेत लेने पर भी हमारी वास्तविक ज्ञान वृद्धि नहीं होती है और न 'सूकरखेत' मात्र का उल्लेख मिलने से हमारा कोई विशेष उपकार होता है। "20

**(छ) बाल्यावस्था**

अंतः साक्ष्य और बाह्यसाक्ष्य से यह तो प्रमाणित है कि तुलसी का बालपन अत्यंत कष्ट और दुख में व्यतीत हुआ। तुलसी ने अपनी कृतियों में अनेक स्थलों पर इसका उल्लेख किया है। अभुक्तमूल नक्षत्र में जन्म लेने के कारण इनके माता-पिता ने इनका त्याग कर दिया। यह अलग बात है कि थोड़े ही समय में इनके माता-पिता भी चल बसे। अपनी बाल्यावस्था का अत्यंत करुण वर्णन तुलसी ने यथा स्थान किया है-

**1. मातु पिता जग जाइ तज्यौ, विधिहू न लिखी कछु भाल भलाई।**

**नीच निरादर भाजन कादर कूकर टूकन लागि ललाई ।। - (कवितावली)**

**2. तनु तज्यो कुटिल कीट ज्यौं तज्यौ मातु पिता हूँ। - (विनय-पत्रिका)**

**3. जायो कुल मँगन बधावनो बजायो सुनि। भयो परिताप पाप जननी जनक को।। - (कवितावली)**

**4. द्वार-द्वार दीनता कही काढ़ि रद परि पा हूँ। - (विनय-पत्रिका)**

**5. जाति के सुजाति के कुजाति के पेटागि बस। खाये टूक सबके बिदित बात दुनी सो।।(कवितावली)**

इस प्रकार के अनेक आत्मकथ्य 'विनय-पत्रिका' तथा 'कवितावली' में भरे पड़े हैं। इन सबसे स्पष्ट है कि तुलसी के बाल्यकाल का पूर्वार्ध अत्यंत कष्ट से व्यतीत हुआ। उदर पोषण के लिए इन्हें द्वार-द्वार भीख माँगनी पड़ी। परंतु उत्तरार्ध में गुरु कृपा से इन्हें विद्याध्ययन का सुयोग प्राप्त हुआ और इनका बाल्यकाल अंधेरी रात से निकलकर पूर्ण प्रकाश में विकसित हुआ।

**(ज) वैवाहिक जीवन**

परम्परा से यह तथ्य स्वीकृत होकर चला आ रहा है कि दीनबंधु पाठक की कन्या रत्नावली से तुलसी का विवाह हुआ था। परंतु मतभेद यहाँ भी हैं। ये मतभेद हैं-तुलसी की ससुराल, श्वसुर और पत्नी के नाम को लेकर। 'तुलसी चरित', 'मूल गोसाईं चरित' तथा 'तुलसी प्रकाश जैसे प्राचीन ग्रंथों में इस बात का उल्लेख है कि तुलसी राजापुर के निवासी थे। तुलसी चरित के अनुसार तुलसी के तीन विवाह हुए थे। उनकी प्रथम दो पत्नियाँ भार्गी पुत्रियाँ थीं। तीसरा विवाह कंचनपुर के लक्ष्मण उपाध्याय की अत्यंत सुंदर विदुषी और शीलवती कन्या बुद्धिमती से हुआ था। इसी बुद्धिमती के उपदेश से तुलसी को संसार से विरक्ति उत्पन्न हुई थी। 'मूल गोसाईं चरित' के अनुसार, तुलसी राजापुर में रामकथा करते थे। यमुना पार के एक ग्राम तारपा के एक भारद्वाज गोत्रीय ब्राह्मण को उनका पाण्डित्य और सौंदर्य भा गया। इन्होंने संवत् 1588 में अपनी विदुषी और सुन्दर कन्या का विवाह तुलसी से कर दिया।

यह कन्या एक बार अपने मायके चली गयी। तुलसी अपनी पत्नी का विछोह सह न सके और अंधेरी रात में शव पर चढ़कर आई हुई बर्षाती नदी पार कर ससुराल पहुँचे। दरवाजे बन्द होने के कारण खिड़की पर लटकते हुए सर्प को रस्सी समझकर उसे पकड़कर घर के भीतर प्रविष्ट हुए। परिवारजन जाग पड़े। रत्ना को अत्यंत लज्जा आयी और उन्होंने पति की भर्त्सना करते हुए कहा-

**अस्थि चर्मयुत देह मम तापर ऐसी प्रीत।**

**तिहुँ आधी जो राम प्रति अवसि मिटति भवभीत।**

तुलसी को बात चुभ गयी और वे उलटे पैरों लौट आये। फिर कभी वे रत्नावली से नहीं मिले।

बाबू श्यामसुंदर दास का मत है कि- "जनश्रुति इन ब्राह्मण देवता को दीनबंधु पाठक और कन्या को रत्नावली के नाम से जानती है। पर वेणी माधवदास इस विषय में चुप हैं।"22

सोरों पक्ष की सामग्री में भी तुलसी की पत्नी का नाम रत्नावली एवं श्वसुर का नाम दीनबंधु पाठक बताया गया है, परंतु इनकी ससुराल के रूप में बदरी ग्राम का उल्लेख हुआ है। शेष कथा पूर्ववत् है।

**(झ) गृह-त्याग के पश्चात्**

अपनी पत्नी द्वारा की गई भर्त्सना के तत्काल पश्चात् तुलसी ससुराल

से उलटे पैरों लौट आये। सहसा ही उन्हें विरक्ति हो गयी। वे देशाटन पर निकल पड़े और काशी, प्रयाग, सोरों, राजापुर, चित्रकूट, अयोध्या, ब्रज, मिथिला आदि स्थलों की अनेक अनेक बार यात्राएँ कीं। भ्रमण करते-करते अंततः काशी में उन्होंने अपना स्थायी ठिकाना बनाया और महाप्रयाण तक यहीं रहे। काशी में रहते हुए वे रामकथा करने लगे इससे इनका यश चारों ओर फैलने लगा। इनका यश काशी के संस्कृतज्ञ पंडित पचा नहीं पाये और इनसे ईर्ष्या करते हुए इन्हें भाँति-भाँति प्रकार से तग करने लगे, परंतु तुलसी विचलित नहीं हुए।

अंतः और बहिर्साक्ष्य बताते हैं कि काशीवास करते समय तुलसी किसी मठ के मठाधीश भी रहे। 'गोसाईं' अभिधान उनकी जितेन्द्रियता का द्योतक तो है ही, यह उनके मठाधीश होने का भी द्योतक है। 'हनुमान बाहुक' में एक स्थल पर वे लिखते हैं-

**तुलसी गौसाई भयो भोंड़े दिन भूलि गयो । 23**

डॉ. माताप्रसाद गुप्त का मत है कि- "काशी में लोलार्क कुण्ड पर एक तुलसी मठ था। तुलसी की ख्याति के कारण इस मठ की भी ख्याति हुई होगी। इतना निश्चित है कि सवत् 1797 तक वह मठ विद्यमान था। इसका प्रमाण यह है कि इंडिया ऑफिस लायब्रेरी में परिरक्षित 'न्याय सिद्धांत मंजरी की एक प्रतिलिपि की पुष्पिका पर "संवत् 1797 बैशाखसुदी पूर्णिमा लिखितम् लोलार्क तुलसीदास मठे जय कृष्णदास शुभम्" - उल्लेख है। 24

एक और दान पत्र किन्हीं शिवरतन सिंह का संवत् 1848 का प्राप्त हुआ है। उसमें "स्थान श्री गोसाईं तुलसीदास जी और श्री गोसाई जी पीतांबर वैष्णव" का उल्लेख है। इससे तीन बातें सूचित होती हैं-

1. तुलसीदास जिस मठ के गोसाईं थे, वह वैष्णव मठ था।

2. संवत् 1848 तक 'तुलसीदास मठ' का नाम बदलकर ' स्थान तुलसीदास हो गया था।

3. इस परिवर्तन का कारण वैष्णव मतानुयायियों की परंपरा का अनुकरण है।

अयोध्या में इस प्रकार के केन्द्र को मठ न कहकर 'स्थान' कहने की प्रथा रही है। तात्पर्य यह कि तुलसी काशी में मठ के मठाधीश रहे हैं। 25

वैराग्य उत्पन्न होने के पश्चात् तुलसी की प्रतिभा का विकास हुआ और अपने पचास-साठ वर्षों के जीवन में इन्होंने अनेक बहुमूल्य कृतियाँ साहित्य जगत को दीं। इतने लम्बे जीवन में यह निश्चित है कि वे देश के अनेक संतों, कवियों तथा अन्य विभूतियों के संपर्क में आये होंगे। साहित्य जगत तथा

इतिहास में इन तथ्यों का उल्लेख है। सूरदास, नन्ददास, केशवदास, बनारसीदास, मधुसूदन सरस्वती जी महाराज, अब्दुर्ररहीम खानखाना आदि के साथ तुलसी की एकाधिक बार भेंट अवश्य हुई होगी।

तुलसीदासजी के सम्बंध साहित्यकारों तथा संत-महात्माओं से तो रहे ही, राजपुरुषों से भी उनकी घनिष्ठता रही। अकबर के दरबार के नवरत्नों में से एक राजा टोडरमल तथा एक अन्य महापुरुष पं. गंगाराम ज्योतिषी से तुलसी के मधुर संबंध रहने के प्रमाण प्राप्त होते हैं। टोडरमल के सम्बंध में उनसे संबंधित पंचायतनामे का तो लिखित प्रमाण भी उपलब्ध है। टोडरमल के निजनोपरांत उनके उत्तराधिकारियों में संपत्ति के बटवारे को लेकर कलह उत्पन्न हुई थी। तुलसी ने इस विवाद का सर्वमान्य समझौता करवाया था। रहीम से भी तुलसी के अत्यंत मधुर संबंध रहे। अब्दुर्रहीम खानखाना संवत् 1646 से 1648 तक बनारस के हाकिम रहे थे। 26

**(ञ) अवसान के पूर्व का परिदृश्य**

पूर्व में उल्लेख किया जा चुका है कि कवि को प्राप्त अपार यश ने काशी के पंडितों को उनका शत्रु बना दिया और उन्होंने तुलसी को भांति भांति से कष्ट देना प्रारंभ किया। 'कवितावली' और 'दोहावली' में इन प्रसंगों के अनेक छन्द हैं। 'दोहावली' के कतिपय छन्द द्रष्टव्य हैं :

**तुलसी रघुवर सेवकहिं खल डांटत मन माखि।**

**बाजराज के बालकहिं लवा दिखावत आंखि ।।**

**रावन रिपु के दास तें कायर करहिं कुचालि ।**

**खरदूसन मारीचि ज्यों नीच जाहिंगे कालि ।।**

**पुन्य पाप जस अजस के भावी भाजन भूरि।**

**संकट तुलसीदास के राम करहिंगे दूरि।।**

**भली कहै बिनु जानेई बिनु जाने अपवाद ।**

**ते भर गादुर जानि जिय करिय न हरष विषाद।**

'कवितावली के अनेक पदों से भी यही तथ्य ध्वनित होता है। एक उदाहरण द्रष्टव्य है:

**कोऊ कहै करत कुसाज दगाबाज बड़ो,**

**कोऊ कहै राम को गुलाम खरो खूब है।**

**साधु जानै महासाधु खल जानै महाखल,**

**बानी झूठी साँची कोटि उठत हबूब है।।**

**चहन न काहू सौं न कहत काहू को कछू**

**सब की सहत उर अंतर न ऊब है-**

**तुलसी को भलो पोच, हाथ रघुनाथ ही के**

**राम की भगति भूमि मेरी मति दूब है। 28**

परंतु तुलसी कुचालियों के कुचक्रों से किंचित भी विचलित नहीं हुए। कवितावली के निम्नलिखित पद से यही ध्वनित होता है :

**ब्याल कराल महाविष पादक मंत्र गयंदहु के रद तोरे।**

**सांसति संक चली डरपै हुते किंकर ते करनी मुख मोरे।**

**नेकु विषाद नहीं प्रहलादहिं कारन केवल के हरि हो रहे।**

**कौन की त्रास करै तुलसी जो पै राखि है राम तो मारिहै को रे।२७**

महाकवि के अंतिम दिन अत्यंत कष्ट पूर्वक व्यतीत हुए। एक ओर तो उनके ईर्ष्यालु शत्रु उनके विरुद्ध नाना प्रकार के षड्यंत्रों की रचना कर रहे थे, दूसरी ओर काशी में फैली महामारी से तथा स्वयं की दैहिक व्याधियों से वे व्यथित थे और उनसे वे जूझ रहे थे। इस महामारी का स्पष्ट उल्लेख उन्होंने 'कवितावली' में इस प्रकार किया है-

**संकर सहर सर नर नारि वारिचर,**

**विकल सकल महामारी मांजा भई है।**

**उछरत उतरात हहरात मरि मारि जात,**

**भभरि भगात जब थल मीचु भई है।**

**देव न दयालु महिपाल न कृपालु चित,**

**बारानसी बढ़ति अनीति नित नई है।**

**पाहि रघुराज पाहि कपिराज रामदूत,**

**राम हू की बिगरी तुही सुधारि लई है। ३०**

यह तथ्य सर्वविदित है कि गोस्वामीजी की बाँह में मरणांतक पीड़ा हुई और उसे निवारणार्थ उन्होंने श्री हनुमानजी से प्रार्थना करने के क्रम में थी 'हनुमान बाहुक' की रचना की थी। 'हनुमान बाहुक' से यह भी विदित होता है कि कवि की सारी देह पर पीबयुक्त फोड़े निकल आये थे। इनसे त्राणार्थ भी उसने श्री हनुमानजी से प्रार्थना की थी। 31 परंतु उनके ग्रंथों में इस बात का कोई उल्लेख नहीं है कि इन फोड़ों तथा बाहु पीड़ा से कवि को मुक्ति मिली थी अथवा नहीं। परंतु एक छन्द में कवि ने स्वीकार किया कि वह राम कृपा से स्वस्थ हो गया था।

**(ट) अवसान**

खट्टे-मीठे अनुभवों को जीवन भर संचय करने व अनुभव करने के पश्चात् कवि के अवसान का समय शनैः शनैः निकट आ रहा था। परंतु अंत समय में भी विवादों ने कवि का पीछा नहीं छोड़ा। कवि के महाप्रयाण की तिथि में विद्वानों में मतभेद उभर आये। गोस्वामी तुलसीदासजी के स्वर्गारोहण की जो विधि जनश्रुतियों में प्रचलित है और जो सामान्यतः मान्य है, वह संवत् 1680 है-

**संवत् सोलह सौ असी असी गंग के तीर।**

**सावन शुक्ला सप्तमी तुलसी तज्यौ सरीर ।।**

विवाद यहीं से प्रारंभ हो जाता है। महाकवि के परिनिर्वाण की तीन तिथियाँ उभरकर सामने आती हैं-

1. श्रावण शुक्ल सप्तमी संवत् 1680 वि.

2. श्रावण कृष्ण तृतीया, संवत् 1680 वि.

3. श्रावण कृष्ण तृतीया, संवत् 1680 वि.

संवत् तो निर्विवाद है, माह भी निर्विवाद है। विवाद है तो केवल तिथि को लेकर। जनश्रुति यह भी चली आ रही है कि जो समय बाबा तुलसीदास के जन्म का है, वही महाप्रयाण का भी है। जन्म के समय का यह दोहा प्रचलित है:

**संवत् सोलह सौ असी असी गंग के तीर।**

**सावन शुक्ला सप्तमी तुलसी, धरेउ सरीर। 2**

जन्म और स्वर्गारोहण के उपर्युक्त दोहों में सब कुछ समान है। अन्तर है तो केवल 'धर्यो' और 'तज्यौ में। श्री वेणीमाधवदास और श्री अविनाश राय दोनों के अनुसार ये ही तिथियाँ मान्य हैं। परंतु वेणीमाधवदास जी ने तुलसी का दिवंगत होना 'सावन स्यामा तीज सनि स्वीकार किया है।

**संवत् सोलह सौ असी, असी गंग के तीर।**

**सावन स्यामा तीज सनि तुलसी तजेउ सरीर।**

परंतु गणना करने पर संवत् 1680 की यह तिथि सही नहीं ठहरती। इस तिथि को शनिवार नहीं अपितु शुक्रवार था।

श्यामसुंदर दास इस दोहे से सहमत प्रतीत होते हैं। वे 'सनि' ही मानते हैं। पं. रामनरेश त्रिपाठी का मत है कि 'तीज' के आगे कोई सनि पाठ मानते हैं, कोई 'को' का उच्चारण करते हैं। जैसे 'गौतम चन्द्रिका' में 'सनि का लोप हो गया है-

**सोरह अरु गुन असी वय तुलसी सहित हुलास।**

**राम राम कहि विदा हवै असी गंग किय वास ।।**

इस दोहे के अनुसार गणना संबंधी अशुद्धि दूर हो जाती है। इसी ग्रंथ में श्रवण बदी तीज को तुलसी की वरसी बतलाई गयी है-

**संवत सोलह सौ एकासी।**

**तुलसी बरसी असी प्रकासी ।।**

**सावन कृष्ण तीज तिथि पाई।**

**यहु गौतम चंद्रिका बनाई।**

इस तिथि के अनुसार तुलसी जी की जन्म तिथि और महाप्रयाण तिथि में एकरूपत्ता स्थापित की गई है।

तिथि कोई भी हो, इतना तो निश्चित है और समस्त विद्वज्जनों को भी मान्य है कि तुलसी का स्वर्गारोहण संवत् 1680 के श्रावण मास में हुआ था। अपने अंतिम दिनों में तुलसीदास अनेक व्याधियों से पीड़ित थे-यह तो तय है। कवितावली के अनेक पद इस तथ्य की ओर संकेत करते हैं-

**जीवे की न लालसा दयालु महादेव मोहि।**

**विदित है तोहि मरिबेई को रहतु है। 25**

यह भी माना जाता है कि अपने जीवन के अंतिम क्षणों में तुलसी जी को क्षेमकरी के दर्शन हुए थे। क्षेमकरी एक पक्षी है जिसके दर्शन अत्यंत शुभ माने जाते हैं। यह मान्यता बाबू शिवनंदन सहाय ने 'कवितावली' के इस सवैये के आधार पर स्थापित की है 36-

कुकुम रंग सुअंग जितो मुखचंद सों चंद सों होड़ रही है।

बोलत बोल समृद्धि चुवै अब लोकत सोच विषाद हरी है।।

गौरी कि गंग विहंगिनिवेश की मंजुल मूरति मोदभरी है।

पेखि सप्रेम पयान समै सब सोच विमोचन क्षेमकरी है।।- (कवितावली 7/180)

(ट) कवि के व्यक्तित्व का समग्र मूल्यांकन

अद्भुत और अपूर्व व्यक्तित्व रहा है-गोस्वामी तुलसीदास का। समूचा व्यक्तित्व विवादग्रस्त। जन्म तिथि जन्म-स्थान, माता-पिता, बालपन, गुरु और अंततः निधन की तिथि भी। एक अर्थ में और भी इनका व्यक्तित्व विलक्षण रहा है। "इनके जीवन के महाकाव्य का प्रथम सर्ग दुख कष्ट अपमान, निसहायता और उपेक्षा के पृष्ठों पर लिखा गया। द्वितीय सर्ग

उजाले पृष्ठों पर लिखा गया। इस अवस्था में इनका विद्याध्ययन प्रारंभ होता है। तृतीय अध्याय तो साक्षात् बालकाण्ड का सीता स्वयंवर है। चौथे अध्याय में पत्नी से प्राप्त भर्त्सना के कारण वैराग्य होने की कथा से युक्त है। पाँचवें अध्याय में बाबा का देशाटन, छठे अध्याय में अपने विरोधियों और शारीरिक व्याधियों से जूझना तथा सातवें अध्याय में जीवन के पटाक्षेप का कथानक है। 37

अपने रस भरे वैवाहिक जीवन को बाबा ने एक झटके में त्याग दिया- सांसारिक संबंधों से उन्हें सहसा और सहज विरक्ति हो गयी। इसके पश्चात् इन्होंने जिस जीवन को अंगीकार किया उसमें राम नाम की मस्त तरंगें थीं और राम नाम के प्रभाव का फक्कड़पन था। उन्हें किसी से कोई प्रयोजन नहीं था। वे केवल राम के थे और राम उनके-

**मेरी जाति पांति न चहाँ काहू की जाति पांति,**

**मेरे कोऊ काम को न हौं काहू के काम को।**

**साधु कै असाधु कै भले कै पोच सोच कहा,**

**का काहू के द्वार परौ जो हौं सो हौं राम को।। - (कवितावली)**

तुलसी बाबा ने एक ही आश्रय ग्रहण कर लिया था-श्रीराम का आश्रय । ये निर्द्वन्द्व थे और निर्भीक थे। इसका कारण उनकी श्रीराम में दृढ़ श्रद्धा, अटल विश्वास तथा अनन्य भक्ति थी। उन्हें ज्ञात था कि जो भी उन्हें प्राप्त हुआ है सब श्रीराम की कृपा से-

**घर-घर माँगे टूक पुनि भूपति पूजे पाँय।**

**ते तुलसी तब राम बिन ये अब राम सहाय ।। - (दोहावली)**

इस प्रकार बाबा ने राम-नाम का आश्रय प्राप्त कर संसार के समस्त परिणामों के प्रति उदासीन रहकर अपना जीवन व्यतीत किया।

तुलसी अत्यंत विनम्र स्वभाव के थे। यह विनम्रता उनके काव्य-ग्रंथों में स्थान-स्थान पर परिलक्षित होती है। उन्हें स्वयं को पंडित, विद्वान, संत, कवि आदि कहने में अत्यंत संकोच होता है-

**कवि न होउँ नहिं चतुर कहावउँ।**

**मति अनुरूप राम गुन गावउँ।**

बाबा ने स्थान-स्थान पर स्वयं को मतिमंद और गंवार तक कहा है। उन्होंने संपूर्ण विश्व को राममय माना और सबको नमन किया-

**सीय राममय सब जग जानी।**

**करउँ प्रनाम जोरि जुग पानी। ३**

यह तुलसी का वैश्विक प्रेम है-वैश्विक करुणा है। तुलसी मूलतः भक्त हैं। उनकी यह भक्ति काव्य के कारण अभिव्यक्त हुई है। तुलसी नानापुराण निगमागम' में तो दक्ष थे ही, 'छहों शास्त्र और सब ग्रंथन में भी पारंगत थे। काव्यशास्त्र पर उनकी गहरी पकड़ थी, फिर भी उनकी विनम्रता की पराकाष्ठा है कि वे कहते हैं कविता का कोई ज्ञान उन्हें नहीं हैं-

**कबित-बिबेक एक नहिं मोरें।**

**सत्य कहउँ लिखि कागद कोरे।**

तुलसी की जागरूक चेतना का प्रसार विश्व व्यापी है, जिसे आज पूरा संसार 'रामचरितमानस' के रूप में अनुभूत कर रहा है।

**संदर्भ :**


1. मूल गोसाईं चरित वेणीमाधवदास, पृ. 3

2. तुलसीदास डॉ माताप्रसाद गुप्त, पृ. 515

3. सरस्वती (जिल्द 20), पृ 77

4. तुलसीदास माताप्रसाद गुप्त, पृ 138

5 गोस्वामी तुलसीदास डॉ रामदत्त भारद्वाज, पृ. 17

6. वही, पृ 172

7 वही, पृ 172

8. वही, पृ. 169

9. तुलसी ग्रंथावली (भाग 3), पृ 18

10 इंडियन एटीक्वेटी, पृ 264

11 ए स्केच ऑफ द रेलिजस सेक्टर ऑफ द हिन्दूज, पृ. 41

12. तुलसीदास डॉ. माताप्रसाद गुप्त, पृ. 139

13. वीणा, संवत् 1995 पृ 546

14 रामचरितमानस तुलसीदास (बालकाण्ड 30)

15. तुलसीदास और उनका काव्य रामनरेश त्रिपाठी, पृ. 70

16. गोस्वामी तुलसीदास डॉ रामदत्त भारद्वाज, पृ. 247

17. इडियन एटीक्वेटी, पृ 264

18. रामचरितमानस तुलसीदास (बालकाण्ड 30)

19. वही, (बालकाण्ड 30)

20. तुलसीदास डॉ माताप्रसाद गुप्त, पृ. 174

21. मूल गोसाई चरित वेणीमाधवदास, दोहा 17



22. गोस्वामी तुलसीदास श्यामसुंदर दास, पृ 37

23. हनुमान बाहुक तुलसीदास, 40

24. तुलसीदास डॉ. माताप्रसाद , पृ. 190

25. वही, पृ. 91

26. हिस्ट्री ऑफ इण्डिया (जिल्द 5) इलियट पृ 548

27. दोहावली तुलसीदास, दोहा 144, 145, 146, 147

28. कविताबली तुलसीदास, (उत्तरकाण्ड 108)

29. वही, (उत्तरकाण्ड 165)

30. वही, (उत्तरकाण्ड 176)

31. हनुमान बाहुक तुलसीदास, 40

32. वही, 39

33 मूल गोसाई चरित वेणीमाधवदास दोहा 119

34 तुलसीदास डॉ. माताप्रसाद गुप्त, पृ. 515

35. कवितावली तुलसीदास (7/167)

36. गोस्वामी तुलसीदास बाबू शिवनंदन सहाय, पृ. 116

37. तुलसी और उनका मानस डॉ लखन लाल खरे, पृ. 36

38. रामचरितमानस तुलसीदास (बालकाण्ड 14/5)

39. वही, (बालकाण्ड 7/1)

40. वही, (बालकाण्ड 8/6)

**द्वितीय अध्याय**

## तुलसीदास का कृतित्व

पूर्व अध्याय में इस बात को दर्शाया गया है कि गोस्वामी तुलसीदास का समूचा व्यक्तित्व कैसा विवादग्रस्त है। विवाद उनके द्वारा विरचित कृतियों में भी है। नागरी प्रचारिणी सभा काशी ने गहन परीक्षण के पश्चात् तुलसी के बारह ग्रंथ ही प्रामाणिक माने हैं। परंतु इनके नाम पर रचित ग्रंथों की संख्या आधा सैकड़ा से कम नहीं हैं। 'हनुमान चालीसा' जैसी कृति को नागरी प्रचारिणी सभा तुलसी विरचित नहीं मानती, परंतु उसकी भाषा-शैली के आधार पर अनेक विद्वान इसे तुलसीकृत मानते हैं।

अब तक जितने भी ग्रंथ तुलसीदास जी के नाम पर प्रचलित हैं, उन्हें तीन भागों में विभक्त किया जा सकता है-अप्रामाणिक, अर्द्ध प्रामाणिक व प्रामाणिक।

**(क) अप्रामाणिक रचनाएँ :**

इस श्रेणी में निम्नलिखित उनतालीस ग्रंथ हैं-

1. अंकावली
2. आरती
3. उपदेश दोहा
4. कड़खा रामायण
5. कलिधर्म रामायण
6. कुंडलिया रामायण
7. कृष्णचरित
8. गीताभाष्य (गीता भाषा)
9. छंदावली (छंदावली रामायण)
10. छप्पय रामायण
11. झूलना रामायण
12. धर्मराय की गीता
13. ध्रुव प्रश्नावली
14. तुलसीदासजी की बानी
15. पदबंध रामायण
16. बजरंग बाण
17. बजरंग साठिका

18. बारहमासी

19. बृहस्पति काण्ड

20. बाहुसर्वांग

21. भगवती गीताभाष्य

22. भरत मिलाप

23. मंगल रामायण (मंगलावली)

24. रस कल्लोल

25. रामनाम कलामणि मंजूषा (नाम कला कोषमणि)

26. रामलला

27. राममुक्तावली (राममंत्र मुक्तावली)

28. रोला रामायण

29. रस भूषण

30. विजय दोहावली

31. संकट मोचन

32. सत भक्त उपदेश

33. साखी तुलसीदास जी की

34. सूरज पुराण (सूर्यपुराण)

35. हनुमान चालीसा

36. हनुमान पंचक

37. हनुमान स्त्रोत

38. ज्ञानदीपिका

39. ज्ञान कौ प्रकरण (ज्ञान परिकरण)

अर्द्धप्रामाणिक श्रेणी में तुलसीजी की मात्र एक रचना है- 'सतसई'। यह 'सतसई' 'तुलसी सतसई' और 'रामसतसई' के नाम से भी विख्यात है। प्रामाणिक रचनाओं की कोटि में दो प्रकार की रचनाएँ हैं। प्रथम प्रकार में तीन रचनाएँ हैं जो सर्वमान्य नहीं हैं, पर बहुमान्य हैं। ये तीन रचनाएँ हैं-

1. वैराग्य सांदीपनि
2. रामाज्ञा प्रश्न
3. रामलला नहछू

निम्नलिखित नौ रचनाएँ ऐसी हैं जो सर्वमान्य तथा प्रामाणिक हैं-

1. कवितावली (हनुमान बाहुक सहित)
2. कृष्ण गीतावली
3. गीतावली (रामगीतावली या पदावली रामायण)
4. जानकी मंगल
5. दोहावली
6. पार्वती मंगल
7. रामचरित मानस
8. बरवै रामायण
9. विनय-पत्रिका (नियमावली अथवा रामगीतावली)

**(ख) अर्द्ध प्रामाणिक रचनाएँ**

इस श्रेणी में सर्वाधिक उनतालीस रचनाएँ हैं। इन सबको अप्रामाणिक मानने के कारण अनेक हैं। सबसे बड़ा कारण यह है कि रामायणी व्यासों की परंपरा में इन्हें तुलसी द्वारा प्रणीत नहीं माना गया है। आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र का मत है कि तुलसी मानस के प्रथम व्यास थे। तुलसी ने बनारस (काशी) में रामलीला का प्रारंभ किया था। तुलसी द्वारा प्रवर्तित मानस कथा का प्रचलन अब भी व्यास पीठों के माध्यम से चल रहा है।

उपर्युक्त उनतालीस कृतियों में से 'कलि धर्म रामायण' को मिश्र बंधुओं ने तुलसी द्वारा प्रणीत माना है। रामायण (रामचरित मानस) से इस कृति की भाषा-शैली के साक्ष्य के आधार पर इसे तुलसीकृत मानने में कोई संदेह नहीं है।

परन्तु यह संदेह उचित नहीं है। क्योंकि, प्रथम तो तुलसीकृत ग्रंथों की विश्वसनीय परंपरा में इसका कोई उल्लेख नहीं है। दूसरे, इसकी भाषा-शैली तुलसी प्रणीत ग्रंथों की शैलियों से सर्वथा भिन्न है।

इन्हीं कृतियों की श्रेणी में एक और कृति 'ज्ञानदीपिका' को कतिपय विद्वानों ने तुलसी द्वारा प्रणीत माना है। पर इसकी न तो कोई प्राचीन प्रति उपलब्ध हुई है न ही इसका रचनाकाल तुलसी के जीवनकाल से मेल खाता है। 'ज्ञानदीपिका में उल्लिखित इसका रचनाकाल आषाढ़ शुक्ल 2 गुरुवार,

संवत् 1681 है। परंतु प्रथम तो यह कृति तुलसीजी के अवसान काल (संवत् 1680) के पश्चात् लिखी गयी है, दूसरे इसकी तिथि अशुद्ध है, तीसरे इसकी भाषा शैली तुलसी जी की कृतियों की भाषा-शैली से सर्वथा भिन्न है। डॉ. माताप्रसाद गुप्त का मत है कि "किसी भी प्रकार से गणना करने पर यह तिथि शुद्ध नहीं उतरती ।"2

अर्ध प्रामाणिक रचनाओं के अंतर्गत मात्र एक ही कृति-'सतसई' का उल्लेख होता है। इस कृति के संबंध में भी विद्वानों के दो वर्ग हैं। एक वर्ग 'तुलसी सतसई की सामग्री को प्रामाणिक मानता है, दूसरा इससे सहमत नहीं है। इस कृति को 'राम सतसई भी कहा गया है। डॉ. माताप्रसाद गुप्त, सतसई और दोहावली का संयोग करके इसे एक नया नाम 'सतसई दोहावली देते हैं। 3

'सतसई दोहावली' अथवा 'सतसई' में संकलित दोहे दो प्रकार के हैं। एक वे, जो तुलसी द्वारा विरचित हैं और उनकी कृति 'दोहावली' में हैं 'सतसई में इन दोहों की संख्या सौ- सवा सौ के लगभग है। इन दोहों के अतिरिक्त जो शेष दोहे हैं, वे संदिग्ध हैं। गोस्वामी तुलसीदास द्वारा रचित होने का उन पर संदेह है। पं. सुधाकर द्विवेदी का मत है कि इन संदिग्ध दोहों का कर्ता गाजीपुर निवासी कोई तुलसीदास कायस्थ है।

डॉ. माताप्रसाद गुप्त मानते हैं कि-" 'सतसई' और 'दोहावली' के मूल में कवि के दोहों का ऐसा संग्रह था जिसको उसके देहावसान के बाद अलग- अलग ढंग से बढ़ाकर इस प्रकार के दो, एक दूसरे से किंचित भिन्न संग्रहों के रूप में उपस्थित किया गया।" आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र का मत है कि- "तुलसी सतसई किसी करामाती की कृपा है। जिसने सतसई की पूर्ति के लिए प्रयास किया है। हो सकता है कि बिहारी सतसई का प्रचार बहुत अधिक होने पर यह प्रेरणा किसी के मन में जागी हो। 'रहीम की सतसई भी ऐसे ही लोगों ने प्रसिद्ध कर रखी है। ऐतिहासिक तथ्य यह है कि बिहारी हिन्दी के प्रथम सतसईकार हैं।"5

उपर्युक्त प्रकार के विश्लेषण से निष्कर्ष यही निकलता है कि किसी ने स्वयं के सौ सवा सौ दोहे तुलसी के दोहों के साथ खपा दिये और नाम दे दिया-'तुलसी सतसई यदि यह सतसई तुलसीकृत होती तब तुलसी को पृथक् से 'दोहावली लिखने की क्या आवश्यकता थी ? दोहावली के पूरे दोहे तो 'सतसई' में हैं ही, मात्र सौ सवा सौ प्रक्षिप्त दोहे ही अधिक हैं। अतः 'तुलसी सतसई को तुलसी विरचित पूर्ण ग्रंथ नहीं माना जा सकता। यह अर्ध

प्रामाणिक ग्रंथ ही है।

इसे अर्ध प्रामाणिक ग्रंथ मानने के पक्ष में एक और तर्क है इसके प्रक्षिप्त दोहों की भाषा-शैली। तुलसी साहित्य का साधारण पाठक भी उनकी भाषा शैली से परिचित है। सतसई के निम्नलिखित दोहों को पढ़कर वह स्वतः ही कह उठेगा कि ये दोहे बाबा द्वारा विरचित नहीं हैं:

**नमो नमो श्रीराम प्रभु परमातम परधाम ।**

**जेहि सुमिरत सिध होत है तुलसी जन मन काम।**

**द्वितीय कोल राजिव प्रथम वाहन निश्चय माहि।**

**आदि एक फल दै भजहु वेद विदित गुण जाहि।।7**

**हल जम मध्य समानयुत याते अधिक न आन।**

**तुलसी ताहि बिसारि सठ भरसत फिरत भुलान।।8**

**(ग) प्रामाणिक रचनाएँ**

प्रामाणिक रचनाओं के अंतर्गत तीन कृतियाँ-वैराग्य सांदीपनि', 'रामलला नहछू' और 'रामाज्ञा प्रश्न ऐसी हैं जो सर्वसम्मत तुलसीकृत स्वीकार्य नही हैं परंतु विद्वानों का एक बहुत बड़ा वर्ग इन्हें तुलसी दास जी द्वारा विरचित स्वीकार करता है। इन तीनों कृतियों पर विद्वानों के विचारों को यहाँ संक्षिप्ततः प्रस्तुत किया जाना समीचीन होगा।

**(अ) बहुसम्मत प्रामाणिक रचनाएँ**

**1. वैराग्य सांदीपनि**

रामकथा के रामायणियों एवं अन्य टीकाकारों श्री वंदन पाठक, पं. रामगुलाम द्विवेदी, पं. बैजनाथ दास, श्री कोदोराम, महात्मा अंजनीनंदन शरण, पं. श्रीकांत शरण, पं. महेन्द्र प्रसाद आदि ये वे स्थापित नाम हैं जो 'वैराग्य सांदीपनि को एक स्वर से तुलसी विरचित मानते हैं। मिश्र बंधु, बाबू श्यामसुंदर दास, बाबू शिवनंदन सहाय, पं. रामचंद्र शुक्ल, पं. रामनरेश त्रिपाठी, आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी, डॉ. रामकुमार वर्मा आदि हिन्दी साहित्य के स्थापित आलोचकों ने भी 'वैराग्य सांदीपनि को बिना किसी किंतु-परंतु के एक स्वर से तुलसीदास जी द्वारा लिखित मानते हैं। पर, डॉ. माताप्रसाद गुप्त ने इसे 'गड्डुलिका प्रवाह' माना है-"व्यापक रूप से यह तुलसीकृत मानी गयी है। किंतु केवल इसी कारण इसे तुलसीदास की प्रामाणिक रचना मानना उचित नहीं जान पड़ता है, क्योंकि एक तो इसकी कोई प्रति

कवि के जीवनकाल की अथवा विशेष प्राचीन नहीं है। अधिक से अधिक प्राचीन प्रति भी प्रायः डेढ़ सौ वर्ष पुरानी है। दूसरे, इसकी शैली और विचारधारा तुलसीदास के अन्य ग्रंथों के समान नहीं है।"9

डॉ. गुप्त द्वारा उठायी गयी दोनों शंकाओं को विद्वानों द्वारा निर्मूल सिद्ध करने का प्रयास किया है। प्रथम, 'वैराग्य सांदीपनि' की कई हस्तलिखित प्रतियाँ खोज में प्राप्त हुई हैं। पर, यह सत्य है कि इनमें कोई भी संस्करण गोस्वामीजी के जीवनकाल अथवा उन्नीसवीं शताब्दी के पूर्व की नहीं है। आज इसके पाँच भिन्न भिन्न, किंतु समरूप संस्करण उपलब्ध हैं:

1. मूल संस्करण-तुलसी ग्रंथावली में संग्रहीत

2. दूसरा संस्करण-पं. वंदन पाठक की टीका और बाबू महादेव प्रसाद की टिप्पणी के साथ

3. तीसरा संस्करण-पं. बैजनाथ दास की टीका के साथ

4. चौथा संस्करण-गीता प्रेस गोरखपुर से प्रकाशित सटीक संस्करण 5. पाँचवाँ संस्करण-पं. श्रीकांत शरण के सिद्धांत तिलक से समन्वित

अब रही बात इस ग्रंथ के रचनाकाल की। इसमें अन्य अनेक ग्रंथों के समान विद्वानों में मतभेद हैं। बाबू श्यामसुंदर दास के अनुसार 'वैराग्य सांदीपनि की रचना सं. 1636 और 1639 के बीच किसी समय हुई। इस ग्रंथ में गोंसाई जी बारंबार अपने मन को राग द्वेष से अलग रहने को कहते हैं और शांति की महिमा गाते हैं। उनके हृदय में राग-द्वेष की सबसे अधिक संभावना उस समय थी, जिस समय उनके रामचरित मानस के विरुद्ध काशी में एक बवंडर-सा उठ रहा था और पंडित लोग उनको कई प्रकार से नीचा दिखाने का प्रयत्न कर रहे थे।"10

गोस्वामी तुलसीदास की प्रथम रचना 'वैराग्य सांदीपनि को बताते हुए पं. रामनरेश त्रिपाठी लिखते हैं कि- "यह उस समय की रचना है, जब तुलसीदास का झुकाव संतमत की तरफ रहा होगा। संत मत का प्रचार उन दिनों जोरों पर था। पर इसका कोई ठीक संवत् बता पाना असंभव है। अनुमान से इसकी रचना संवत् 1620 की कही जा सकती है।"11

डॉ. गुप्त का दूसरा तर्क 'वैराग्य सांदीपनि' की विचारधारा और शैली को लेकर है। डॉ. गुप्त ने 'वैराग्य सांदीपनि से 'परसै बिना निकेत, कोमल बानी संत की रचते अमृतमय आइ", "मोह अंध रबि बचन बहावै"-जैसे पंद्रह उद्धरण देते हुए कहा है कि इनमें शैलीगत भिन्नता है अतः यह रचना तुलसी कृत नहीं हो सकती। परंतु डॉ. गुप्त ने उद्धरण देते हुए जिन संदेहों को व्यक्त किया

है. विद्वानों ने उन समस्त आक्षेपों का बिंदुवार तथा प्रामाणिक उद्धरण देते हुए पटाक्षेप किया है। अब यह माना जाने लगा है कि-'वैराग्य सांदीपनि तुलसीदास जी की रचना है।

**2. रामलला नहछू**

इस कृति की बहुत कम उपलब्ध हस्तलिखित प्रतियों के दो पाठ हैं। एक पाठ सामान्य ज्ञान प्रतियों का है। कृति रामलला नहछू के छपे हुए संस्करण इसी प्रति के हैं। इस पाठ में चालीस द्विपदियाँ (बीस चतुष्पदियाँ अथवा अस्सी पंक्तियों) हैं। डॉ. माताप्रसाद गुप्त के पास दूसरे पाठ की प्रति है। उसमें 52 पंक्तियाँ अर्थात् 26 द्विपदियाँ हैं। प्रकाशित व अप्रकाशित संस्करण में अंतर है। मात्र बारह द्विपदियाँ ऐसी हैं जो दोनों प्रतियों में पायी गई हैं। प्रकाशित पाठ की जो द्विपदियाँ अप्रकाशित पाठ में नहीं मिलतीं, उनमें वे पद भी प्राप्त होते हैं, जिनमें सोहारिन, अहीरिन, तंबोलिन, दर्जिन, मालिन, बारिन और मोचिन का रूप चित्रण है, पहले से विद्यमान नाइन का उल्लेख है और कौशल्या की जिठानी का निर्देश है। 12

इस कृति की प्रामाणिकता के संबंध में दो आक्षेप उभरकर सामने आते हैं। प्रथम, इसमें उत्तान श्रृंगार का वर्णन है। इसमें दशरथजी को निम्न कुल की सुंदरियों के रूप-यौवन के प्रति आकर्षित होना दिखाया गया है। परंतु डॉ. माताप्रसाद गुप्त का उत्तर है कि "हो सकता है कि यह पद (जिसमें दशरथजी का यह कृत्य वर्णित है) प्रक्षिप्त हो। 'नहछू में जो एक और बड़ी विचित्रता है, जिसकी तुलना के लिए तुलसी ग्रंथावली में उदाहरण मिलना असंभव है। वह है उसके ठेठ श्रृंगार की परकीया रति, जिससे निम्न कुल की स्त्रियाँ भी नहीं छूटने पायी हैं। "13

दूसरा आक्षेप इस कृति पर भाषा-शैली संबंधी है। आक्षेप किया गया है कि इस कृति में इतिहास, प्रबंध और शैली की दृष्टि से अत्यधिक त्रुटियों हैं। इस आक्षेप का उत्तर यह दिया गया है- "वे तथाकथित दोष वस्तुतः दोष नहीं हैं। एकाध दोषों से कृति अप्रमाणिक नहीं होती। दोष तो 'रामचरित मानस' में भी हैं। उन्हें दोष मानने वाले विद्वानों ने रामलला नहछू को तुलसी की 'बालचेष्टा अर्थात् प्रारंभिक कृति मानकर प्रस्तुत आपत्ति का समाधान स्वयं भी प्रस्तुत कर दिया है।" 14

'रामलला नहछू के रचनाकाल पर भी विचार किया जाना आवश्यक है। इस कृति में न तो रचनाकाल दिया हुआ है और न ही किसी घटना का

उल्लेख है जिससे यह अनुमान लगाया जा सके कि इस कृति का संभावित रचनाकाल क्या हो सकता है? डॉ. रामकुमार वर्मा इस कृति के रचनाकाल के संबंध में तीन संभावनाएँ व्यक्त करते हैं: "प्रथम, यह रचना संवत् 1639 की है, दूसरी, संवत् 1669 में कवि ने इसे चलते-फिरते बना दिया हो, तथा तीसरी, यह कि काव्य कला की दृष्टि से यह 'जानकी मंगल' तथा 'रामचरित मानस' के पूर्व निर्मित प्रतीत होती है।"15

बाबू श्यामसुंदर दास और पं. रामनरेश त्रिपाठी 'पार्वती मंगल' व 'जानकी मंगल' के साथ-साथ 'रामलला नहछू का रचनाकाल संवत् 1643 के आसपास मानते हैं। डॉ. रामदत्त भारद्वाज इसका रचनाकाल संवत् 1665 के कुछ पूर्व का मानते हैं। 16 पं. सद्गुरुशरण अवस्थी इसे संवत् 1616 के आसपास की रचना मानते हैं।"17

'रामलला नहछू', 'रामाज्ञा प्रश्न', 'जानकी मंगल' और 'पार्वती मंगल-ये चार कृतियाँ अन्य कृतियों से अपेक्षाकृत छोटी हैं। चित्रात्मकता, अर्थ-व्यंजना एवं भाषा-प्रवाह का विश्लेषण करने पर विद्वानों ने 'रामलला नहछू' को 'रामाज्ञा प्रश्न' और 'जानकी मंगल' के बीच की कृति माना है। इससे उन्होंने यह निष्कर्ष भी निकाला है कि 'रामलला नहछू का रचनाकाल संवत् 1628-29 का होगा।

**3. रामाज्ञा प्रश्न**

'सगुनमाला, 'सगुनावली', 'रामयण सगुनौती', 'रामाज्ञा प्रश्न', 'रघुवर शलाका' आदि शीर्षक से उपलब्ध सारी कृतियों के समान पाठ होने के कारण इन्हें 'रामाज्ञा प्रश्न' ही माना गया है। यहाँ यह उल्लेख्य है कि' रामशलाका' और 'रामाज्ञा प्रश्न' दो भिन्न हैं। श्रीरामशलाका तो 'रामचरितमानस' के प्रायः सभी संस्करणों में हैं, पर यह तुलसी विरचित नहीं है। रामाज्ञा प्रश्न के 345 दोहे छह घण्टे लगातार परिश्रम से तैयार हुए होंगे। ये दोहे छह घण्टे के लिए अत्यंत अधिक है। 18

प्रस्तुत कृति की तीन हस्तलिखित प्रतियाँ प्राप्त हुई हैं जो अत्यंत प्राचीन हैं। प्रथम प्रति संवत् 1655 की पंजाब से मिली है। दूसरी प्रति के बारे में कहा जाता है कि स्वयं तुलसीजी की हस्तलिखित प्रति काशी में पंडित गंगाराम के उत्तराधिकारियों के पास थी। इस प्रति की एक प्रतिलिपि छक्कन लाल कायस्थ ने संवत् 1884 में तैयार की थी। तीसरी प्रति संवत् 1689 की है जो काशी नरेश के संग्रहालय में सुरक्षित है। इस प्रति का पाठ अन्य प्रतियों के पाठों के ही समान है। 19

तुलसीजी की अन्य लघु कृतियों की भाँति इस कृति पर भी उनके द्वारा रचित होने में संदेह व्यक्त किया गया है। दो आक्षेप इसके पक्ष में हैं। प्रथम शिथिल रचना शैली के कारण यह ग्रंथ तुलसी की काव्य-कला के अनुरूप नहीं है। दूसरा आक्षेप यह है कि इस ग्रंथ के कथानक में भिन्नता है। परंतु विद्वानों ने विश्लेषण करते हुए इन दोनों ही आक्षेपों को नकार दिया है और 'रामाज्ञा प्रश्न को निर्विवाद रूप से तुलसी द्वारा प्रणीत ग्रंथ घोषित किया है। विद्वानों ने प्रस्तुत कृति का रचना काल भी संवत् 1627-28 के आसपास माना है।

### (आ) सर्वसम्मत प्रामाणिक रचनाएँ

पूर्व में उल्लेख किया जा चुका है कि नौ रचनाओं को विद्वानों ने सर्वसम्मति तथा निर्विवाद रूप से घोषित किया है जिनका अकारादि क्रम से उल्लेख किया जा चुका है। इनके संभावित रचनाकाल के अनुसार यहाँ उनका संक्षिप्त परिचय प्रस्तुत है।

### 1. जानकी मंगल

सीताजी के विवाह का इस ग्रंथ में सुरुचि पूर्ण वर्णन है। इस लघुकाय ग्रंथ की रचना संवत् 1626 से संवत् 1629 के मध्य विद्वानों ने निर्धारित की है। बाबा वेणीमाधवदास के अनुसार- "तुलसी ने 'जानकी मंगल', 'पार्वती मंगल तथा 'रामलला नहछू की रचना अपनी मिथिला यात्रा के समय की थी। यह समय संवत् 1639 के आसपास ठहरता है।"20 डॉ. रामकुमार वर्मा, पार्वती मंगल' में दी गयी तिथि के अनुसार 'जानकी मंगल' को संवत् 1643 में रचित मानते हैं। डॉ. माताप्रसाद गुप्त इसे संवत् 1626 के लगभग रचित मानते हैं।"

'जानकी मंगल' की अनेक हस्तलिखित प्रतियाँ उपलब्ध हैं। एक प्राचीन प्रति अयोध्या के 'कामद कुंज' में संवत् 1632 की लिखी बतायी गई है। परंतु डॉ. गुप्त मानते हैं कि वह प्रति देखने में नहीं आयी। 23 इस प्रति की एक प्रतिलिपि नागरी प्रचारिणी सभा काशी में है। एक प्रति अयोध्या के पं. राम रक्षा त्रिपाठी के पास है। गीता प्रेस गोरखपुर सहित अनेक स्थलों से इस ग्रंथ के संस्करण प्रकाशित किये जा चुके हैं।

### 2, पार्वती मंगल

जानकी मंगल से साम्य रखती हुई इस लघु कृति की अनेक हस्तलिखित प्रतियाँ उपलब्ध हैं। किंतु इनमें से कोई भी तुलसी के समय की अथवा अति

प्राचीन नहीं है। 163 पदों की इस कृति में 'जानकी मंगल की भांति शिव- पार्वती के विवाह का हृदयहारी और विशद् वर्णन है। इस कृति का रचनाकाल इसी ग्रंथ में कवि ने इस प्रकार दिया है-

**जय संवत् फागुन सुदि पाँचैं गुरु दिनु ।**

**अश्विनि विरचेउँ मंगल सुनि सुख छिनु छिनु । 24**

अर्थात् 'पार्वती मंगल' की रचना जय संवत् में फाल्गुन शुक्ल पंचमी गुरुवार को हुई। "ग्रंथ की रचना फाल्गुन शुक्ला पंचमी गुरुवार को हुई। चूँकि जय वर्ष संवत् 1643 के आरंभ तक चलता रहा, अतः कवि ने उस पूरे संवत् को जय संवत् माना है। 25

**3. कृष्ण गीतावली**

यह जगविदित है कि गोस्वामी तुलसीदास जी श्रीराम के अनन्य भक्त थे। गोस्वामी जी ने जितने ग्रंथों की रचना की है, वे सभी श्रीराम पर केन्द्रित हैं। दो ग्रंथ ही ऐसे हैं जिनके केन्द्र में श्रीराम नहीं हैं- 'पार्वती मंगल' एवं 'श्रीकृष्ण गीतावली' । जहाँ 'पार्वती मंगल' में शिव-पार्वती के विवाह की मनोरम झाँकी है, वहीं 'श्रीकृष्ण गीतावली' में श्रीकृष्ण की झाँकी है।

कृष्ण गीतावली के जितने भी प्रकाशित संस्करण हैं उनमें पाठ साम्य है। परन्तु एक विषमता यह परिलक्षित होती है कि कृष्ण गीतावली के अनेक पद सूरदास के 'सूरसागर' में उपलब्ध हैं। 'कृष्ण गीतावली की पद संख्या 24, 32, 33, 34, 42, 43 तथा 44 'सूरसागर' में क्रमशः पद संख्या 3616, 3944, 4220, 4139 पर यथावत हैं। 26

यहाँ सहज ही एक शंका उपस्थित होती है कि क्या तुलसी जैसे महाकवि ने सूरदास के पदों की चोरी की होगी, अथवा सूर ने तुलसी के ये पद, 'सूरसागर' में लेकर उन पदों में अपने नाम की छाप दी होगी ? सूर और तुलसी हिन्दी साहित्य के सूर्य और चन्द्रमा हैं दोनों ही कवियों से कोई स्वप्न में भी यह कल्पना नहीं कर सकता कि परस्पर दोनों में से किसी ने दूसरे के पदों को अपना बनाया होगा। इस तथ्य का समाधान परक उत्तर विद्वानों ने अब तक प्रस्तुत नहीं किया है। यह तो निश्चित है कि 'कृष्ण गीतावली' की रचना गोस्वामीजी की ब्रज यात्रा के पश्चात् हुई होगी। पं. रामनरेश त्रिपाठी का मत है कि-"संवत् 1643 और 1650 के बीच में 'कृष्ण गीतावली' का रचनाकाल है। यह गीतिकाव्य तुलसी ने या तो वृंदावन में जब वे नाभादास और नंददास से मिलने गये थे, तब या ब्रज से लौट आने के बाद लिखा गया होगा। "27

'रामचरितमानस' का रचनाकाले संवत् 1631 है-यह सर्वमान्य और प्रामाणिक तथ्य है। संभव है इस महान ग्रंथ की रचना के पाँच-सात वर्षोपरांत गोस्वामीजी ब्रज की यात्रा पर गये। लोक में इस संबंध में एक कथा प्रचलित है। एक बार तुलसीदासजी ब्रज की यात्रा पर गये। मंदिर में जब वे दर्शनार्थ गये, तब वहाँ गर्भगृह में श्रीकृष्ण विराजित थे। तुलसी के इष्ट तो श्रीराम थे। उन्होंने प्रभु के समक्ष शर्त रखी-

**का छबि बरनौं आपकी, भले बने हो नाथ।**

**तुलसी मस्तक तब नबै, धनुष बाण लो हाथ ।।**

और भक्त का मान रखने के लिए भगवान ने तत्क्षण रूप परिवर्तित कर लिया। शेष भक्त उन्हें श्रीकृष्ण दिखायी दे रहे थे, परंतु तुलसी को अपने आराध्य दिखायी दे रहे थे-

**कित मुरली कित चन्द्रिका कित गोपिन कौ साथ।**

**अपने जन के कारणें श्रीकृष्ण बने रघुनाथ ।।**

यह भी इतिहास सम्मत तथ्य है कि अपनी ब्रज यात्रा के समय तुलसी ने सूरदास नंददास आदि भक्तों से भेंट की थी। अधिक संभावना यह है कि तुलसी की काव्य-कला को सम्मान देने को लिए सूरदासजी ने इन पदों को अपने 'सूरसागर में स्थान दिया हो। 28

बाबू श्यामसुंदरदास का मत है कि-" 'कृष्ण गीतावली' एक संग्रह ग्रंथ है अतः उसकी रचना एक काल में नहीं हुई। कृष्ण गीतावली के पद और रामगीतावली (गीतावली) के पदों के साथ सवत् 1617 एवं 1628 के मध्य लिखे गये और उनका संग्रह कवि ने संवत् 1628 में किया। "29

डॉ. रामकुमार वर्मा भी बाबू श्यामसुंदर दास के उक्त मत का समर्थन करते हुए कहते हैं-"जिस तरह 'जानकी मंगल' और 'पार्वती मंगल' युग्म है, उसी प्रकार 'रामगीतावली' (गीतावली) और कृष्णगीतावली दोनों की रचनाओं से ज्ञात होता है कि ये ग्रंथ उस समय लिखे गये होंगे, जब कवि पर ब्रज भाषा और कृष्ण काव्य का अत्यधिक प्रभाव होगा।"30

इन तमाम तर्क वितर्कों के मध्य मूल तथ्य यही है कि 'कृष्ण गीतावली', तुलसी का एकमात्र कृष्णकाव्य है और यह उनके आराध्य श्रीराम से इतर श्रीकृष्ण को समर्पित है।

**4. गीतावली**

बाबू श्यामसुंदर दास ने 'गीतावली' को 'रामगीतावली' कहा है। 31 (संभव

है कृष्ण गीतावली के वजन पर रामगीतावली नामकरण किया हो) विद्वानों ने 'गीतावली' और 'विनय-पत्रिका को अपने पूर्व रूप से भिन्न माना है। तुलसी ने गेय पदों की रचना के क्रम में राम विषयक गीत लिखे होंगे। इन गीतों के दो संग्रह तैयार हुए होंगे। जो गीत रामकथा विषयक थे, उन्हें संग्रहीत कर उसका नामकरण किया गया। 'पदावली रामायण। श्रीराम के प्रति आत्मनिवेदन परक गीतों के संग्रह को नाम दिया गया-'रामगीतावली । पुनः संपादित रूप में 'पदावली रामायण' को 'गीतावली' और 'रामगीतावली को 'विनय-पत्रिका नाम दिया गया। 32

कृष्णगीतावली की भाँति 'गीतावली में भी सूरदासजी के कुछ पद पाये जाते हैं। बाबू श्यामसुंदर दास का इस संबंध में मत है कि- "संभवतः तुलसीदासजी की रचनाओं में मिलने वाले सूरदास के इन पदों को तुलसीदासजी ने गाने के लिए पसंद किया होगा और तुलसीदास जी को प्रिय होने के कारण आगे चलकर उनके शिष्यों ने उचित परिवर्तन के साथ उन्हें उनकी रचनाओं में मिला दिया गया होगा। इसीलिए अधिक संभावना यही है कि इन पदों के मूल रचयिता तुलसीदास जी ही हैं। फलतः यह मानना पड़ेगा कि 'सूरसागर में बहुत-सा अंश ऐसा होगा जो प्रक्षिप्त है और इसी प्रक्षिप्त अंश में ये दो-चार पद भी हो सकते हैं जो 'गीतावली में पाये जाते हैं।"33

बाबा की प्रायः समस्त रचनाओं की भाँति 'गीतावली' का रचनाकाल भी विवादों से घिरा है। बाबा वेणीमाधवदास ने 'रामगीतावली' (गीतावली) को तुलसी की प्रथम कृति बताते हुए इसका संकलन-संपादन काल संवत् 1628 बतलाया है। 34 बाबू श्यामसुंदर दास जी का मत है कि इस ग्रंथ के पदों की रचना संवत् 1616 और 1628 के मध्य हुई, उनका संग्रह संवत् 1628 में किया गया। 35 पं. रामनरेश त्रिपाठी ने 'गीतावली' का रचनाकाल संवत् 1625 से 1628 के मध्य मानते हैं। 36 डॉ. रामकुमार वर्मा का मत है कि 'गीतावली' का निर्माण 'रामचरित मानस' के पश्चात् संवत् 1643 के आसपास हुआ होगा। 37

'गीतावली' के समग्र एवं गहन अध्ययन से यह निष्कर्ष प्राप्त होता है कि यह ग्रंथ श्रेष्ठ नहीं, उत्कृष्ट गीति-काव्य है। गीति के समस्त लक्षण और गुणों से इसके गीत सज्जित हैं। श्रीराम के प्रति समय-समय पर जो भाव-लहरियाँ गोस्वामीजी के हृदय में उठीं, वही गीत बन गयीं। इन्हीं गीतों का संग्रह है- 'गीतावली' ।

**5. विनय पत्रिका**

'गीतावली' अथवा 'रामगीतावली' के परिचय के क्रम में 'विनय-पत्रिका' पर पर्याप्त प्रकाश डाला जा चुका है। वर्तमान में 'विनय-पत्रिका' के जो भी संस्करण उपलब्ध हैं, उनमें 279 पद हैं। महात्मा अंजनीनंदन शरण ने प्रश्न किया है कि-109 और 125 पद जो सभी पोथियों में पाये जाते हैं, वे सब प्रक्षिप्त हैं? उत्तर देते हुए वे कहते हैं-कवि ने समय समय पर कुछ गेय पदों की रचना की, फिर उन्हें संकलित कर उस ग्रंथ का नामकरण 'श्रीराम गीतावली किया। आगे के वर्षों में गोसाई जी द्वारा विनय के पद लिखे गये होंगे, तब उन्होंने विनय के पदों को 'विनय-पत्रिका' का कलेवर दिया गया। इसमें कम से कम 108 नये पद जोड़े गये। 38

यह तो निश्चित है कि 'रामगीतावली' या 'गीतावली के विनय के पदों को संपादित किया जाकर 'विनय पत्रिका' का रूप प्रदान किया गया। संपादन और संकलन का यह कार्य कवि ने स्वयं किया है। विवाद मात्र यह है कि यह कार्य किस अवधि में सम्पन्न हुआ। इस बिंदु पर विद्वानों में मतैक्य नहीं है। बाबू श्यामसुंदर दास के अनुसार- "विनय-पत्रिका का निर्माण संवत् 1636 से 1639 के मध्य हुआ होगा।"39 पं. रामनरेश त्रिपाठी मानते हैं कि "संभव है, संवत् 1640 में इसके कुछ नये पद बने हों और फिर सबको मिलाकर संवत् 1666 के बाद 'पत्रिका' पूर्ण कर दी गयी हो। इसमें काशी की महामारी का कहीं भी संकेत नहीं है। इससे निश्चय ही यह संवत् 1669 के पहले बन चुकी थी। विनय-पत्रिका को तुलसी के हाथों संवत् 1668 के आसपास वर्तमान रूप प्राप्त हुआ है। संवत् 1668 के बाद वृद्धावस्था में तुलसीदास ने जो कुछ लिखा, वह कवितावली में है।"40

संवत् 1631 में 'रामचरितमानस' का प्रणयन प्रारंभ होता है। 'विनय पत्रिका' के पदों का लेखन, संपादन और संकलन का कार्य इसके दो-तीन वर्षोपरांत ही हुआ होगा। अतः यह अनुमान किया जा सकता है कि 'विनय-पत्रिका' का सृजन काल संवत् 1634 के पश्चात् ही है।

'रामचरित मानस' के पश्चात् 'विनय पत्रिका' ही तुलसीदासजी की महत्वपूर्ण कृति मानी जाती है। इस कृति में तुलसी ने समभाव प्रदर्शित करते हुए समस्त देवी-देवताओं की स्तुतियाँ और वंदना की है। इतना ही नहीं इस कृति में तुलसी के आध्यात्मिक विचारों का भी प्रतिपादन हुआ है। जीव, ब्रह्म, माया, जगत, द्वैतवाद, अद्वैतवादादि विषयक विचारों का प्रतिपादन है- 'विनय- पत्रिका' में। इन सबके साथ-साथ तुलसी की अपने आराध्य के प्रति दैन्य

भावना तो प्रकट हुई ही है।

विद्यालयों, महाविद्यालयों और विश्वविद्यालयों के पाठ्यक्रमों में 'विनय- पत्रिका' के पदों का समावेश होने के कारण भी यह कृति चर्चित हुई है। इतना ही नहीं, विभिन्न राग रागनियों में निबद्ध होने के करण 'विनय-पत्रिका' के पद संगीताकारों को भी आकृष्ट करते रहे हैं। इन्हीं सब कारणों से 'विनय-पत्रिका', मानस के पश्चात् दूसरी लोकप्रिय कृति है-बाबा तुलसीदास की।

### 6. दोहावली

'दोहावली' भी एक संग्रह ग्रंथ है। वर्तमान में इस ग्रंथ के जितने भी संस्करण उपलब्ध हैं, उनमें 573 दोहे संग्रहीत हैं। इनमें से दो दोहे 'वैराग्य सांदीपनि' में, पैंतीस दोहे 'रामाज्ञा प्रश्न' में तथा पचासी दोहे रामचरित मानस में पाये जाते हैं। शेष दोहों की स्वतंत्र सत्ता है। इन स्वतंत्र सत्तात्मक दोहों में से एक दोहा वह है जो टोडर के उत्तराधिकारियों के मध्य हुई पंचायत के पंचायतनामे के शीर्ष पर उल्लिखित है-

**जान्यौ यह सब दसरथहिं धरमु न सत्य समान।**

**राम तजे जेहि लागि बिनु राम परिहरै प्रान।**

एक दोहे में रूद्रबीसी का उल्लेख है। 42 'रूद्रबीसी क्या है-इसे प्रसंगवश समझ लेना आवश्यक है। 'रूद्रबीसी' अथवा 'रूद्रविंशति' ज्योतिष में एक महादशा होती है। साठ वर्षों की बार्हस्पत्य वर्ष-प्रणाली के अंतिम बीस वर्ष को कहते हैं। 43 स्वामी कन्नू पिल्लई के अनुसार "इस वर्ष प्रणाली के अंतिम बीस वर्ष संवत् 1623 से संवत् 1642 तक पड़ते हैं और यह समय तुलसीदास जी का काल था।"44 परंतु मिश्र बंधु इस रूद्रविंशति काल को संवत् 1665 से संवत् 1685 तक मानते हैं। 45 ग्रियर्सन महोदय, पं. सुधाकर द्विवेदी की गणना को मान्यता देते हुए रूद्रविंशति का समय संवत् 1655 से 1675 तक मानते हैं। 46 रूद्रविंशति का यह बीस वर्षीय समय अत्यंत कष्टकर माना जाता है। 'दोहावली' के तीन दोहों में गोस्वामीजी ने वृद्धावस्था तथा मृत्यु का शब्दांकन किया है। 47 तीन दोहों में बाहुपीड़ा का दृश्य वर्णित है। 48 'दोहावली के समस्त संकलित दोहों के अवलोकन और अनुशीलन से एक तथ्य स्पष्ट होता है कि यह ग्रंथ किसी एक समय में नहीं लिखा गया, अपितु इसका रचनाकाल तुलसी के साहित्यिक जीवन से प्रारंभ होकर उनके जीवन के अंतिम समय तक विस्तारित है।

"दोहावली' में संकलित दोहों में भ्रम की स्थिति बनाने में 'सतसई' की

भूमिका कम महत्वपूर्ण नहीं है। 'सतसई' के परिचय में इस तथ्य का उल्लेख किया जा चुका है कि किन्हीं महानुभाव ने 'दोहावली' के दोहों में सौ-सवा सौ अपने दोहे मिलाकर 'सतसई' का रूप दे दिया था। पर अब मूल 'दोहावली से वे मिश्रित दोहे निकाले जा चुके हैं और ग्रंथ को परिमार्जित रूप दे दिया गया है।

इस ग्रंथ के दोहे किसी एक विषय-वस्तु अथवा भाव-भूमि पर आधृत नहीं है। नीति, भक्ति, वैराग्य, दैन्य, प्रार्थना, सामयिक समाज चित्रण व आत्मकथा तमाम विविध विषयों पर 'दोहावली' के दोहे केन्द्रित हैं। इनका रचनाकाल संवत् 1626 से संवत् 1680 तक विस्तारित है।

**7. बरवै रामायण**

बरवै एक छन्द है, जिसके प्रत्येक चरण में 12 और 7 के क्रम में उन्नीस मात्राएँ होती हैं। अंत में गुरु लघु (SI) आवश्यक है। प्रस्तुत ग्रंथ की संपूर्ण रचना इसी छन्द में की गयी है।

बरवै रामायण की रचना के पीछे बाबा वेणीमाधवदास ने एक घटना का उल्लेख किया है। किंवदंती है कि अब्दुर्रहीम खानखाना (रहीम) का कोई मुंशी अवकाश पर गया हुआ था। अवकाश समाप्ति के उपरांत वह प्रस्थान करने लगा तो वियोग पीड़ा से व्यथित उसकी पत्नी ने एक बरवै लिखकर अपने पति के द्वारा रहीम के पास भेजा

**प्रेम प्रीत के बिरवा चलेहु लगाय।**

**सींचन की सुधि लीजौ मुरझि न जाय ।।**

रहीम का कवि हृदय इस बरवा से अत्यंत प्रभावित हुआ। उन्हें यह छन्द इतना भाया कि अपनी कृति-'बरवै नायिका भेद' की रचना इसी छन्द में की। रहीम ने मुंशी को तो पुनः घर जाने का आदेश दिया ही, कुछ बरवै रचकर तुलसी के पास भेज दिये। तुलसी को भी यह छन्द पसंद आया और इसी छन्द में उन्होंने 'बरवै रामायण' की रचना की। यह घटना संवत् 1669 की है। 49 डॉ. रामदत्त भारद्वाज ने भी इस तिथि को स्वीकार किया है। 50 डॉ. रामकुमार वर्मा इस तिथि को संकलन की तिथि मानते हैं। 51

गोस्वामीजी प्रणीत कृतियों में यह कृति जितनी छोटी है, उतनी ही इसमें उलझनें हैं। इतनी उलझनें अन्य किसी ग्रंथ के साथ नहीं हैं। इस ग्रंथ की जितनी भी हस्तलिखित प्रतियाँ उपलब्ध हैं, उनमें उतनी ही शायद पृथक् पृथक् भिन्नता है। कुछ प्रतियों में मात्र 69 बरवै हैं तो कुछ प्रतियों में 396 व

405 पद हैं। पंद्रह बरवै ऐसे हैं, जो समस्त प्रतियों में पाये जाते हैं। इस प्रकार कुल चार सौ चवालीस बरवै छन्दों की भिन्नता है।

डॉ. गुप्त के मतानुसार 'बरवै रामायण' की सर्वाधिक प्राचीन प्रति सं. 1797 की है, जो प्रतापगढ़ के राजकीय पुस्तकालय में संरक्षित है। इसी के आधार पर मुद्रित पाठ के प्रथम 42 बरवै तथा उत्तरकाण्ड के बरवै क्रमांक 59 से 69 तक इसी प्रतिलिपि में नहीं मिलते। इनके स्थान पर इस प्रति में 25 अन्य छन्द मुद्रित पाठ के 53 से 58 के पूर्व आते हैं। परंतु इन्हें बहिष्कृत नहीं किया जा सकता क्योंकि ये पूर्णतः तुलसी की शैली में लिखित हैं। एक उदाहरण-

**सोहत परम कुटीतर सीताराम।**

**लखन समेत बसहुँ तुलसी उर धाम। 2**

'बरवै रामायण' की जितनी भी उपलब्ध प्रतियाँ हैं, उनमें छन्द भेद तो है ही, कथानक भेद भी है। अनेक प्रतियों में नायिका भेद के उदाहरण जैसे लगने वाले शृंगारिक पद पाये जाते हैं। इन पदों को तुलसीकृत मानने में संदेह होता है। अब तक गीता प्रेस गोरखपुर व 'तुलसी ग्रंथावली में संग्रह सहित 'बरवै रामायण' के पाँच संस्करण प्रकाशित हो चुके हैं।

'बरवै रामायण' में 'रामचरितमानस' की कथा को बरवै छन्द में निबद्ध किया गया है। 'मानस' की भांति इस ग्रंथ में काण्ड हैं। इसकी भाषा भी मानस की भांति अवधी है, परंतु इसमें बोलचाल की अवधी का बाहुल्य है। ग्रंथ को फारसी शब्दावली से बचाया गया है। इस ग्रंथ की प्रतियों में अति भिन्नता होने से एक बात तो तय है कि इस ग्रंथ का संपादन गोस्वामीजी ने स्वयं नहीं किया है।

'बरवै रामायण' में 'रामचरितमानस' की कथा को यथातथ्य ग्रहण किया गया है। कतिपय स्थलों पर तो मानस की शब्दावली को भी यथावत् रख दिया गया है। कतिपय छन्द (क्र. 5, 6, 18 आदि) वृद्धावस्था के सूचक हैं। अतः यह अनुमान किया जा सकता है कि 'बरवै रामायण' के छन्दों का रचनाकाल संवत 1630 से 1680 के मध्य रहा होगा।

**8. कवितावली-हनुमान बाहुक**

गोस्वामीजी को अपने जीवनकाल में बाँह की भीषण पीड़ा हुई थी। उसके निवारणार्थ उन्होंने हनुमानजी से प्रार्थना की थी। प्रार्थना के ये पद- कवितावली में संकलित हैं। परंतु कतिपय लोगों ने इन छन्दों को कवितावली

से अलग कर हनुमान बाहुक शीर्षक से तुलसी की स्वतंत्र रचना का रूप दे दिया। वस्तुतः हनुमान बाहुक स्वतंत्र रचना न होकर कवितावली का ही एक अंश है। 'श्रीकृष्ण गीतावली', 'गीतावली', 'बरवै रामायण', 'विनय-पत्रिका' और 'दोहावली' की भांति 'कवितावली' भी एक संकलन ग्रंथ है। इस ग्रंथ में संवत् 1631 (या पूर्व से भी) से लेकर तुलसी के अवसान काल (संवत् 1680) तक के पद संकलित हैं।

'कवितावली' की जो भी प्राचीन हस्तलिखित प्रतियाँ उपलब्ध हुई हैं, उनमें पर्याप्त पाठ भेद तो हैं ही, उनके क्रम में भी अन्तर है। गीता प्रेस गोरखपुर सहित इसके अब तक विभिन्न स्थानों से चार संस्करण प्रकाशित हो चुके हैं। विनय-पत्रिका की भांति कवितावली भी इसीलिए लोकप्रिय हुई है कि इसके पदों को संगीत में निबद्ध किया गया है तथा पाठ्यक्रमों में इस कृति के अनेक पदों को शामिल किया गया है।

कवितावली का महत्व इस दृष्टि से भी है कि इसके अनेक कवित्तों के द्वारा तुलसी के जीवन-वृत्त पर तथा सामयिक घटनाक्रम पर थोड़ा सा ही सही, प्रकाश पड़ता है। अनेक पदों के द्वारा यह विदित होता है कि अपने जीवन के अंतिम दिनों में गोस्वामीजी को अनेक रोगों ने घेर लिया था। हनुमान बाहुक' के अनेक पद इसके साक्षी हैं :

**घेरि लियो रोगनि कुजोगनि कुलोगनि ज्यों,**

**बासर जलद घनघटा धुकि धाई है।**

X X X

**पाँय पीर पेट पीर बाँह पीर मुँहपीर**

**जरजर सकल सरीर पीरमई है। 4**

X X X

**बाहुक सुबाहु नीच लीचर मरीचि मिलि,**

**मुँहपीर केतुजा कुरोग जातुधान है।**

**9. रामचरित मानस**

चूँकि प्रस्तुत कृति का कथ्य और विषयवस्तु 'रामचरितमानस' से है, अतः इस महाकाव्य के विस्तृत परिचय की दृष्टि से इसे सबसे अंत में लिया गया है।

देश भर में 'रामचरितमानस' की अनेक प्रामाणिक अप्रामाणिक हस्तलिखित प्रतियाँ उपलब्ध हैं। इनमें कुछ निम्नलिखित अनुसार है :

**1. राजापुर की मानस-** राजापुर (जिला बाँदा) उ. प्र. तुलसी की

जन्मभूमि मानी जाती है। इनके वंशजों के पास अब भी मानस की एक प्राचीन प्रति है, जो गोस्वामी द्वारा हस्त लिखित बतायी जाती है। वस्तुतः यह 'मानस' की सम्पूर्ण प्रति नहीं है। तुलसी के तथा कथित वंशज अयोध्याकाण्ड के जिन दस-बीस जीर्ण शीर्ण पन्नों के दर्शन श्रद्धालुओं को कराते हैं, वे तुलसी के लिखे प्रतीत नहीं होते। क्योंकि एक तो इसकी लिखावट तुलसी की कथित लिखावट से मेल नहीं खाती, दूसरे इसमें अनेक त्रुटियाँ हैं जो इस प्रति को तुलसी का मानने में संदेह उत्पन्न करती हैं। तीसरी महत्त्वपूर्ण बात यह है कि इस खंडित प्रति में किसी लिपिकार और लिपिकाल का कोई उल्लेख नहीं हैं।

**2. श्रावण कुंज की प्रति-** अयोध्या के श्रावण कुंज मंदिर में स्थित मानस की यह प्रति सबसे अधिक प्राचीन मानी जाती है। इस प्रति का 'बालकाण्ड' प्राचीन है और कृति सं. 1661 की कही जाती है। परंतु डॉ. गुप्त का मत है कि यह प्रति संवत् 1661 की नहीं, अपितु 1651 की है। 56

**3. काशी नरेश की प्रति-** श्रावण कुंज की प्रति के बालकाण्ड को छोड़कर काशी नरेश से प्राप्त मानस की प्रति सर्वाधिक प्राचीन है। इस प्रति का लिपिकाल सं. 1704 है।

**4. भारत कला भवन की प्रति-**अयोध्याकाण्ड से रहित यह प्रति भारत कला भवन, काशी में सुरक्षित है। इसका लिपि काल संवत् 1721 है।

**5. शंभू नारायण की प्रति-** यह प्रति संवत् 1762 की है और भारत कला भवन, काशी की प्रति की प्रतिलिपि है। पं. शंभू नारायण, काशी नागरी प्रचारिणी सभा में पुस्तकालयाध्यक्ष थे। यह प्रति इनके निजी संग्रहालय में थी।

**6. खजुरी की प्रति-** पं. सुधाकर द्विवेदी के पिता द्वारा यह प्रति संवत् 1916 से 1921 के मध्य लिखि गयी थी। यह प्रति इनके उत्तराधिकारियों के पास खजुरी (काशी) में सुरक्षित है।

**7. मिर्जापुर की प्रति-**डॉ. माताप्रसाद गुप्त को यह प्रति मिर्जापुर से प्राप्त हुई थी। इस प्रति का लिपि काल संवत् 1878 है।

8. मानस के दो संस्करण संवत् 1953 और संवत् 1995 में बेंकटेश्वर प्रेस, बम्बई से प्रकाशित हुए थे।

विभिन्न प्रकाशन संस्थानों से भी 'मानस' प्रकाशित होता रहा है। इन प्रकाशित संस्करणों को विभिन्न विद्वानों ने संपादित किया था। प्रमुख सम्पादन

एवं प्रकाशन निम्नानुसार है-

1. गीता प्रेस गोरखपुर द्वारा प्रकाशित तथा पं. नंददुलारे वाजपेयी द्वारा संपादित ।

2. लीडर प्रेस इलाहाबाद द्वारा प्रकाशित तथा पं. विजयानंद त्रिपाठी द्वारा संपादित।

3. काशीराज न्यास वाराणसी द्वारा प्रकाशित तथा पं. विश्वनाथ प्रसाद मिश्र द्वारा संपादित।

4. हिन्दुस्तानी ऐकेडमी इलाहाबाद द्वारा प्रकाशित व डॉ. माताप्रसाद गुप्त द्वारा संपादित ।

5. हिन्दुस्तानी ऐकेडमी इलाहाबाद द्वारा प्रकाशित व पं. शंभूनाथ चौबे द्वारा संपादित ।

उपर्युक्त प्रमुख संपादनों के अतिरिक्त लाला भगवानदीन 'दीन', आचार्य रामचन्द शुक्ल, श्रीकान्त शरण, महात्मा अंजनीनन्दन शरण, पं विजयानंद त्रिपाठी, महावीर प्रसाद मालवीय तथा विनायक राव जैसे शताधिक विद्वानों ने मानस की सारगर्भित व विद्वतापूर्ण एवं गवेषणात्मक टीकाएँ लिखी हैं।

**(घ) मानस का रचनाकाल**

तुलसी जी के अन्य समस्त ग्रंथों का रचनाकाल विद्वानों की दृष्टि में विवादास्पद है, क्योंकि कवि ने किसी भी कृति में रचनाकाल का उल्लेख नहीं किया है। परंतु 'रामचरित मानस' इसका अपवाद है। इस महाकाव्य में रचनाकाल का स्पष्ट उल्लेख है :

**संबत् सोरह सै एकतीसा। करउँ कथा हरि पद धरि सीसा ।।**

**नौमी भौम बार मधुमासा। अवधपुरीं यह चरित प्रकासा ।।**

**जेहि दिन राम जनम श्रुति गावहिं। तीरथ सकल तहाँ चलि आवहिं ।।**

**असुर नाग खग नर मुनि देवा। आइ करहिं रघुनायक सेवा ।।**

**जन्म महोत्सव रचहिं सुजाना। करहिं राम कल कीरति गाना।**

इन पंक्तियों के आगे और भी-

**सब बिधि पुरी मनोहर जानी। सकल सिद्धिप्रद मंगल खानी ।।**

**बिमल कथा कर कीन्ह अरंभा । सुनत नसाहिं काम मद दंभा ।।**

**रामचरितमानस एहिं नामा। सुनत श्रवन पाइअ बिश्राम।**

उपर्युक्त पंक्तियाँ 'रामचरितमानस के रचनाकाल को स्पष्ट रूप से

उद्घोषित करती हैं कि 'रामचरितमानस' के लेखन का प्रारंभ रामजन्म के दिन अर्थात् संवत् सोलह सौ इकत्तीस के मधुमास (चैत्रमास) की नवमी की तिथि और भौमवार (मंगलवार) के दिन अयोध्या में हुआ था।

'रामचरित मानस' की रचना प्रारंभ होने की तिथि का स्पष्ट और निर्विवाद संकेत तो कवि ने दिया है। परंतु विद्वानों में उत्सुकता इस बात को लेकर है कि मानस का समापन कितने दिन में हुआ। बाबा वेणी माधवदास के अनुसार 'रामचरितमानस' को पूर्ण होने में दो वर्ष, सात माह और छब्बीस दिन लगे:

**दुई वत्सर सातेक मास परे । दिन छब्बिस माँझ सो पूर करे।**

**तैंतीस को संवत् औ मगसर। सुभ घौस सुराम विवाहिँ पर।**

अर्थात् संवत् 1663 के अगहन की राम विवाह की तिथि को 'रामचरितमानस' पूर्ण हुआ।

**(ङ) मानस-लेखन का क्रम**

विद्वानों का मत है कि 'रामचरितमानस' का आज जो स्वस्थ व प्रकाशित रूप है, ऐसा प्रारंभ में नहीं था अर्थात् 'मानस' का लेखन क्रमबद्ध नहीं हुआ। पं. रामनरेश त्रिपाठी का मत है कि- "सबसे पहले अयोध्या में अयोध्याकाण्ड की रचना हुई। इसे लेकर गोस्वामी जी काशी चले गये। पुनः बालकाण्ड और अरण्यकाण्ड लिखे गये। पूरे अयोध्याकाण्ड और 'बालकाण्ड' की 328वीं अर्धाली की रचना करने के पश्चात् संवत् 1631 की रामनवमी को "संवत् सोलह सौ इकतीसा से उन्होंने मानस का प्रारंभ किया। काशी पहुँचकर 'किष्किन्धाकाण्ड का निर्माण हुआ। उसका पहला सोरठा इस बात का प्रमाण है। तत्पश्चात् 'सुंदर, लंका' और अंत में 'उत्तरकाण्ड' की रचना हुई।"60

परंतु जो तर्क पंडित त्रिपाठी ने अपने कथन की पुष्टि में प्रस्तुत किये हैं, वे पुष्ट नहीं हैं। यद्यपि अनेक विद्वानों का मत है कि 'मानस' का 'अयोध्याकाण्ड पहले लिखा गया और बालकाण्ड इसके बाद। परंतु विद्वज्जनों का एक वर्ग इस तथ्य का खंडन करता है।

मानस के लेखन का क्रम जो भी हो; परंतु आज तो सैकड़ों वर्षों से यह ग्रंथ देश के ही नहीं, विदेश के भी जन-जन का हार बना हुआ है और बना रहेगा।

**(च) तुलसी समग्र की काल क्रमानुसार सूची**

पूर्वोक्त विवेचन से गोस्वामी तुलसीदास जी के समग्र साहित्य लेखन

का तिथि क्रमानुसार कुछ ऐसा चित्र बनता है:

**प्रारंभिक समय**

| | |
|---|---|
| 1. वैराग्य सांदीपनि | लगभग 1626-27 वि. |
| 2. रामाज्ञा प्रश्न | लगभग 1627-28 वि. |
| 3. रामलला नहछू | लगभग 1628-29 वि. |
| 4. जानकी मंगल | लगभग 1629-30 वि. |

**मध्यकालीन लेखन**

| | |
|---|---|
| 5. रामचरित मानस | लगभग 1631 वि. |
| 6. पार्वती मंगल | लगभग 1643 वि. |

**उत्तरकालीन लेखन (संकलित रचनाएँ)**

| | |
|---|---|
| 7. कृष्ण गीतावली | लगभग 1643-1660 वि. |
| 8. गीतावली | लगभग 1630-1670 वि. |
| 9. विनय-पत्रिका | लगभग 1631-1679 वि. |
| 10. दोहावली- | लगभग 1626-1680 वि. |
| 11. बरवै रामायण- | लगभग 1630-1680 वि. |
| 12. कवितावली-हनुमान बाहुक- | लगभग 1631-1680 वि. |

**संदर्भ :**


1. हिन्दी नवरत्न: मिश्रबंधु, पृ. 98
2. तुलसीदास : डॉ. माताप्रसाद गुप्त, पृ. 134
3. वही, पृ. 129
4. वही, पृ. 227
5. हिन्दी साहित्य का अतीत आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, पृ. 237
6. तुलसी सतसई 1/1
7. बही, 3/12
8. वही, 3/58
9. तुलसीदास डॉ. माताप्रसाद गुप्त, पृ. 134

10. गोस्वामी तुलसीदास श्यामसुंदरदास, पृ. 79
11. तुलसीदास और उनका काव्य पं. रामनरेश त्रिपाठी, पृ. 223
12. रामलला नहछू : गोस्वामी तुलसीदास, पृ. 9
13. तुलसीदास : डॉ. माताप्रसाद गुप्त, पृ. 231
14. वही, पृ. 233
15. हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास डॉ. रामकुमार वर्मा, पृ. 372
16. तुलसीदास और उनके काव्य डॉ. रामदत्त भारद्वाज, पृ. 40
17. तुलसी के चार दल पं. सद्गुरुशरण अवस्थी, पृ. 99
18. तुलसीदास और उनका काव्य पं. रामनरेश त्रिपाठी, पृ. 210
19. तुलसीदास : डॉ. माताप्रसाद गुप्त, पृ. 206
20. मूल गोसाईं चरित: वेणीमाधवदास, पृ. 82
21. हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास: डॉ. रामकुमार वर्मा, पृ. 362
22. तुलसीदास : डॉ. माताप्रसाद, पृ. 238
23. वही, पृ. 209
24. पार्वती मंगल तुलसीदास, 5
25. तुलसीदास : डॉ. माताप्रसाद गुप्त, पृ. 241
26. वही, पृ. 225
27. तुलसीदास और उनका काव्य पं. रामनरेश त्रिपाठी, पृ. 227
28. तुलसी और उनका मानस डॉ लखन लाल खरे, पृ. 36
29. गोस्वामी तुलसीदास बाबू श्यामसुंदर : पृ. 66
30. हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास डॉ. रामकुमार वर्मा, पृ. 385
31. गोस्वामी तुलसीदास बाबू श्यामसुंदरदास, पृ. 67
32. वही, पृ. 93
33. वही, 69
34. मूलगोसाईं चरित बाबा वेणीमाधवदास, पृ. 33
35. गोस्वामी तुलसीदास बाबू श्यामसुंदरदास, पृ. 66
36. तुलसीदास और उनका काव्य पं. रामनरेश त्रिपाठी, पृ. 224
37. हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास डॉ. रामकुमार वर्मा, पृ. 389
38. तुलसीदास : डॉ. माताप्रसाद गुप्त, पृ. 223
39. गोस्वामी तुलसीदास बाबू श्यामसुंदर, पृ. 78
40. तुलसीदास और काव्य पं. रामनरेश त्रिपाठी, पृ. 229
41. दोहावली : गोस्वामी तुलसीदास, 2/9
42. वही, पृ. 240
43. संस्कृत-इंग्लिश डिक्शनरी मोनियर विलयम्स, पृ. 849

44. इंडियन क्रॉनॉलॉजी स्वामी कन्नू पिल्लई, पृ. 141
45. 45. तुलसी ग्रंथावली मिश्रबंधु, पृ. 85
46. इंडियन एंटीक्वेटी, पृ. 97
47. दोहावली: गोस्वामी तुलसीदास 155, 178, 563
48. वही, 234, 235, 236
49. गोस्वामी तुलसीदास बाबू श्यामसुंदर दास, पृ. 86
50. तुलसीदास और उनके काव्य डॉ. रामदत्त भारद्वाज, पृ. 40
51. हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास डॉ. रामकुमार वर्मा, पृ. 398
52. बरवै रामायण: तुलसीदास, पृ. 105
53. हनुमान बाहुक : गोस्वामी तुलसीदास, पृ. 35
54. हनुमान बाहुक : गोस्वामी तुलसीदास, पृ. 38
55. वही, पृ. 39
56. तुलसीदास : डॉ. माताप्रसाद गुप्त, पृ. 212
57. रामचरित मानस गोस्वामी तुलसीदास (बालकाण्ड 33/2, 3, 4)
58. वही, (बालकाण्ड 34/3, 4)
59. मूल गोसाईं चरित बाबा वेणीमाधवदास, 41/1
60. तुलसीदास और काव्य पं. रामनरेश त्रिपाठी, पृ. 116

## तृतीय अध्याय

## युगीन परिदृश्य और नारी की स्थिति

रचनाकार अपने काल की परिस्थितियों से असंपृक्त नहीं रह सकता। उनका प्रभाव उस पर पड़ता है और उसकी रचना में किसी-न-किसी रूप में परिलक्षित होता है। गोस्वामी तुलसीदास अपने युग के महान् संत और कवि थे। लगभग आधा युग या पाँच शताब्दियाँ व्यतीत होने के पश्चात् आज भी उनकी रचनाएँ समाज में जीवंत हैं और प्रासंगिक हैं।

तुलसीजी पर अपने सामयिक परिवेश का प्रभाव तो पड़ा ही, अपने जीवन की खट्टी-मीठी अनुभूतियों को भी उनके कवि हृदय ने संचित किया। इस संचित निधि को अपने काव्य के माध्यम से उन्होंने समाज को दे दिया, विश्व पर न्यौछावर कर दिया। तुलसी की नारी के सम्बंध में धारणा क्या थी और क्या चिंतन था, यह जानने के पूर्व उनके समय के परिदृश्य का संक्षिप्त आकलन किया जाना अत्यावश्यक है।

**(क) राजनीतिक परिदृश्य**

गोस्वामीजी के समूचे जीवन काल में देश की केन्द्रीय सत्ता मुगल वंश के प्रतापी बादशाह जलालुद्दीन अकबर के हाथ में थी।

हुमायूँ की सन् 1555 में मृत्यु हुई। परंतु अपनी मृत्यु के पूर्व उसने अपने बेटे जलालुद्दीन को युवराज घोषित कर उसे लाहौर का सूबेदार नियुक्त किया। 15 अक्टूबर, 1542 को जन्मे अवयस्क जलालुद्दीन 14 फरवरी, 1556 (संवत् 1613) को अकबर के नाम से सिंहासनारूढ़ हुआ। इस समय अकबर का संरक्षक बैरम खाँ था। जब अकबर गद्दी पर बैठा, तब वह पंजाब के कुछ भाग का नाम मात्र का शासक था। "इस समय राजधानी बिल्कुल बर्बाद हो चुकी थी, थोड़े से मकानों के सिवाय अब वहाँ कुछ नहीं रहा था। इसके साथ ही महामारी प्लेग का आक्रमण हुआ, जिसका असर हिन्दुस्तान के बहुत से शहरों में फैल गया। असंख्य आदमी मर गये और आदमी आदमी का भक्षण

करने। इक्के दुक्के आदमी को अकेला पाकर पकड़ लेने के लिए नरभक्षियों के दल संगठित हो चुके थे। इसी प्रकार की स्थिति हुमायूँ के संबंधियों और सरदारों के द्वारा की जा चुकी थी।""

निश्चित ही तुलसी के मस्तिष्क में इस दुर्भिक्ष की भयावहता अंकित होगी, तभी उन्होंने 'कवितावली सहित 'रामचरितमानस' में इसका वर्णन किया है:

कलि बारहिं बार दुकाल परै। बिनु अन्न दुखी सब लोग मरै।।

अकबर का संरक्षक बैरम खाँ हुमायूँ के समय से ही उसका विश्वासपात्र था। परंतु मतभेदों के कारण अकबर ने सन् 1560 में बैरम खाँ को संरक्षक पद अलग कर दिया। से बैरम खाँ से छुटकारा पाकर अकबर ने अपने राज्य का विस्तार करना प्रारंभ कर दिया। पहला युद्ध हेमू से सन् 1556 (संवत् 1613) में हुआ। इतिहास में यह युद्ध पानीपत के द्वितीय युद्ध के नाम से जाना जाता है। इस युद्ध के पश्चात् सन् 1561 में मालवा, जौनपुर व चुनार सन् 1567-68 में चित्तौड़, सन् 1569 में रणथम्भौर और कालिंजर, सन् 1562 में मालवा, सन् 1564 में गौंडवाना, सन् 1564 में मेड़ता, सन् 1570 में मारवाड़, सन् 1572 में गुजरात, सन् 1574- 76 में बिहार और बंगाल, सन् 1581 में काबुल, सन् 1585 में कश्मीर, सन् 1596 में सिंध, सन् 1592 में उड़ीसा, सन् 1595 में बलूचिस्तान व कंधार तथा सन् 1597-99 में दक्षिण के राज्यों को जीत कर समूचे भारत पर अपना आधिपत्य स्थापित कर लिया। सन् 1600 में अकबर ने असीरगढ पर अधिकार कर लिया। यह अकबर की अंतिम विजय थी। स्वतः सिद्ध है कि जब बड़े-बड़े और शक्तिशाली राज्य अकबर के अधीन हो गये, तब छोटे-छोटे राज्यों की शक्ति ही क्या थी।

सन् 1605 (संवत् 1662) में अकबर का निधन हुआ। अकबर का इकलौता पुत्र सलीम, जहाँगीर के नाम से गद्दी पर बैठा। सलीम और अकबर में पूर्व से ही मनमुटाव चल रहा था। सलीम ने अकबर के प्रति विद्रोह कर दिया था। अकबर के दरबार के नवरत्नों में से एक तथा 'अकबरनामा' के लेखक अबुल फजल को सलीम अपना सबसे बड़ा शत्रु मानता था। ओरछा के तत्कालीन राजा रामशाह के भाई वीरसिंह (जो उस समय बड़ौनी के जागीरदार थे) से सलीम की अत्यंत घनिष्ठ मित्रता थी। वीर सिंह ने सन् 1602 में, ग्वालियर के पास आंतरी के जंगल में एक छापा मार युद्ध में फजल का

वध कर दिया और उसका सिर काटकर सलीम के पास कड़ा (इलाहाबाद) के किले में भिजवा दिया। अकबर अपने सर्व प्रिय अबुल फजल की ऐसी मृत्यु का समाचार सुनकर अत्यंत व्यथित हो गया। वृद्धावस्था, इकलौते पुत्र द्वारा विद्रोह एवं अपने प्रिय की मृत्यु के दुखद समाचार ने अकबर के मनोबल को तोड़कर रख दिया। अंततः इस घटना के दो वर्ष पश्चात् ही वह इस संसार से विदा हो गया।

जहाँगीर सन् 1605 में मुगल साम्राज्य के तख्त पर आसीन हुआ और अक्टूबर 1627 में उसकी मृत्यु हो गई। अपने बाइस वर्ष के शासन काल में जहाँगीर ने प्रत्यक्ष रूप से शासन कम ही किया। जहाँगीर केवल नाम का ही सम्राट रहा। जहाँगीर की प्रेयसी और पत्नी ने भी लगभग 15 वर्षों तक असली शासन किया। जहाँगीर केवल नाम का ही सम्राट रहा। नूरजहाँ का मूल नाम मेहरून्निसा था। "मेहरून्निसा युवा होने पर एक अद्वितीय सुन्दरी के रूप में दिखाई देती थी और इसलिए उसका विवाह वयस्क होने से पूर्व ही अली कुली खाँ के साथ कर दिया गया था। वह फारस का नौजवान पहले अब्दुर्रहीम खानखाना की सेना में था और बाद में इसे शाहजादा सलीम के साथ 1599 में मेवाड़ अभियान के लिए तैनात किया गया। एक शेर को मारने के फलस्वरूप इसे शेर अफगान की उपाधि से विभूषित किया गया और 1606 में बंगाल के सूबेदार कुतुबुद्दीन की ताबीन में नियुक्त किया गया। 'इन्किलाबनामा-ए- जहाँगीरी का लेखक लिखता है कि शेर अफगान की विद्रोही प्रवृत्ति की जानकारी कुतुबुद्दीन को मिल रही थी। अतः कुतुबुद्दीन उसे सजा देने के लिए वर्दवान पहुँचा तो शेर अफगान ने उसकी हत्या कर दी। कुतुबुद्दीन के एक विश्वास पात्र वीर सैनिक पीर खाँ ने प्रतिक्रिया स्वरूप शेर अफगान को मौत के घाट उतार दिया। इसके बाद जहाँगीर ने शेर अफगान की विधवा मेहरून्निसा और उसकी पुत्री लाड़ली बेगम को दरबार में बुला लिया जहाँ मेहरून्निसा का पिता एतमाउद्दौला एक बड़े पद पर नियुक्त था। मेहरुन्निसा की नियुक्ति सलीमा बेगम की सेविका के रूप में की गयी और मार्च 1611 में नोरोज के मेले के अवसर पर जब जहाँगीर की दृष्टि उस पर पड़ी तो वह उस पर आसक्त हो गया और मई 1611 में जहाँगीर ने मेहरून्निसा के साथ विवाह कर लिया। विवाह के उपरांत पहले उसे नूरमहल और फिर नूरजहाँ की उपाधि से विभूषित किया।"3

नूरजहाँ ने अपना गुट तैयार किया और जहाँगीर के प्रत्येक कार्य में प्रभावी हस्तक्षेप करने लगी। जहाँगीर का बेटा खुर्रम गद्दी का प्रबल दावेदार

था और नूरजहाँ अपने दामाद को देश का भावी बादशाह बनाना चाहती थी। इससे गृह कलह उत्पन्न हो गया। सन् 1622 के पश्चात् जहाँगीर लगभग अपंग हो गया। खुर्रम नूरजहाँ का विरोधी हो गया। इसने जहाँगीर और नूरजहाँ के विरुद्ध विद्रोह कर दिया और अंततः शाहजहाँ के नाम से सिंहासन पर बैठने में सफल हो गया।

गोस्वामी तुलसीदास जी का निधन संवत् 1680 (सन् 1623) में हुआ था। जहाँगीर का निधन संवत् 1684 (सन् 1627) में हुआ। इस प्रकार गोस्वामीजी का समूचा काल दो मुगल बादशाहों के कार्य काल तक विस्तारित है।

**(ख) सामाजिक परिदृश्य**

विवेच्य काल में सामाजिक परिस्थितियों में अपने से पूर्व की अपेक्षा कोई विशेष परिवर्तन परिलक्षित नहीं होता है। अकबर के पूर्व जो सामाजिक परिस्थितियाँ थीं, वही न्यूनाधिक अकबर और जहाँगीर के समय रहीं। इतना अन्तर अवश्य ही परिलक्षित हुआ कि जहाँ अकबर के पूर्व तक हिंदुओं पर जजिया कर लगाया जाता था, हिन्दुओं को बलात् मुसलमान बनाया जाता था, उन्हें ऊँचे पद नहीं दिये जाते थे, हिंदुओं को दास बनाया जाता था, हिंदुओं की स्त्रियों को बलात् उठाकर उनके साथ कुकर्म कर उन्हें हरम में डाला जाता था यह सब अकबर के काल में समाप्त हो गया। यद्यपि अकबर के पूर्व केवल शेरशाह के व्यक्तित्व को इस बात के लिए श्रेय दिया जाता है।

भारतीय समाज पूर्व से ही वर्णों में विभक्त था। समाज में ब्राह्मण का स्थान सर्वोच्च था। क्षत्रिय राज काज संभालते थे, वैश्य व्यापार करते थे और शूद्र उक्त तीनों वर्षों की सेवा करते थे। समाज में शूद्रों का स्थान निम्न होने के कारण इनकी स्थिति अत्यंत शोचनीय थी। "निम्न जाति की संख्या काफी बढ़ गयी थी। उन्हें चाण्डाल कहकर पुकारा जाता था। समाज में उन्हें पृथक् रखा जाता था। छुआछूत का भेदभाव बहुत अधिक प्रचलित था। इनके साथ निर्मम अत्याचार और बर्बर व्यवहार किया जाता था। इसलिए इन लोगों ने इस्लाम अथवा ईसाई धर्म ग्रहण करना प्रारंभ कर दिया था। जाति की पंचायतें होती थी। उनका गाँव और कस्बों में वर्चस्व बना हुआ था। दास- दासियों के क्रय-विक्रय और अरबों ईरानियों व पुर्तगालियों के द्वारा समुद्र तट पर रहने वाले लोगों की स्त्रियों के साथ विवाह कर लेने अथवा अवैध संबंध स्थापित कर लेने के कारण समाज में वर्ण संकरों की संख्या बहुत अधिक बढ़ गयी थी। मुगल काल में विशेष रूप से अकबर और जहाँगीर के काल में

देवी-देवताओं की पूजा, तीर्थ यात्रा, दान दक्षिणा आदि लोकप्रिय थी।"

मुगल काल का प्रमुख भोजन गेहूँ, चावल, दूध, दही व इनसे बने पकवान आदि था। माँस भक्षण भी होता था परंतु यह ब्राह्मण वर्ग में प्रचलित नहीं था। "स्वयं अकबर ने भी अपने भोजन में परिवर्तन कर दिया था। वह साल में केवल तीन-चार माह ही माँस का भक्षण करता था। लेकिन उसे फलों के प्रति विशेष रुचि थी। तरबूज, अंगूर और खरबूजा उसके प्रिय फल थे। उसने हिंदुओं और जैनियों के संपर्क में आने के बाद गाय का वध तो निषिद्ध कर ही दिया था, साथ ही यह भी आदेश दिया कि निश्चित धार्मिक दिनों पर किसी भी पशु का वध नहीं किया जाए।"5

अकबर ने राजपूतों की कन्याओं से विवाह संबंध करना प्रारंभ कर दिये थे। इतना ही नहीं, "उसने अपने पुत्र-पौत्रों को राजपूत कन्याओं के साथ विवाह हिन्दू परिपाटी के अनुसार ही किये वधू के घर बारात ले जाता था और शादी हिंदू और मुस्लिम की रीति-रिवाजों के अनुसार ही की जाती थी। किसी निकट के संबंधी की मृत्यु हो जाने पर वह हिन्दू प्रथा के अनुसार मुंडन भी करवाता था। अकबर ने इन तरीकों से हिंदुओं और मुसलमानों को एक दूसरे के निकट लाने का प्रयास किया था।"6

अकबर कालीन समाज में एक और बात परिलक्षित हुई। अकबर के पूर्व तक हिन्दू और मुसलमानों की दो भिन्न संस्कृतियाँ थीं। तुर्कों, अफगानों और मुगल सरदारों के क्रूरतापूर्ण व्यवहार के कारण दोनों समुदायों में घृणा, द्वेष और संदेह की दीवार खड़ी हो गयी थी। अकबर ने अपनी सहिष्णु नीति के द्वारा उस खाई को पाटने का कार्य किया। जहाँगीर ने भी अकबर की नीति का अनुसरण करने का प्रयास किया, परंतु वह पूरी तरह सफल न हो सका। नूरजहाँ ने यद्यपि कुछ उदारता अवश्य दिखलायी। "नूरजहाँ निर्धन तथा अनाथ कन्याओं के प्रति बहुत उदार थी। उसने लगभग पाँच सौ अनाथ कन्याओं के विवाह करवाये और उन्हें शाही कोश से दहेज आदि भी दिए। हरम की अन्य निर्धन दासियों की भी हर प्रकार से सहायता करती थी।" भले ही यह नीति नूरजहाँ की थी, परंतु एक सम्राट के नाम पर इसका पूरा श्रेय जहाँगीर को ही है।

'यथा राजा तथा प्रजा' के सिद्धान्तानुसार, सामान्यतः सम्राट अथवा अपने शासक को जिस प्रकार की क्रियाएँ करते हुए जनता देखती है, वैसा ही करती है। अकबर और जहाँगीर के शासनकाल में सामाजिक व्यवस्थाओं का रूप परंपरागत तो रहा। परंतु शासकों द्वारा जो परिवर्तन किये गये अथवा अपनाये गये, जन सामान्य ने उन्हें अपना लिया।

विवेच्य काल में एक परिवर्तन और परिलक्षित हुआ। भारत के दक्षिणी और दक्षिण-पश्चिम की ओर से विदेशियों का भारत आगमन प्रारंभ हो गया और इनका आगमन विशुद्ध व्यापारिक था। परंतु व्यापार के साथ-साथ इन विदेशी व्यापारियों ने अपने धर्म और अपनी संस्कृति का शनैः-शनैः प्रचार-प्रसार करना प्रारंभ कर दिया। डच और पुर्तगालियों ने अनेक स्थलों पर अपने चर्च स्थापित किये। यह अलग बात है कि इस संस्कृति का उतना प्रभाव उत्तरी भारत पर नहीं पड़ा जितना देश के अन्य स्थलों पर पड़ा।

अकबर और जहाँगीर के शासन काल में हिन्दुओं में जाति प्रथा यद्यपि अत्यन्त कठोर थी, परंतु अकबर ने इसे तोड़ने के प्रयास किये। विवाह संबंध अपनी ही जाति में सम्पन्न होते थे। हिन्दू एक से अधिक विवाह नहीं कर सकता था जबकि मुसलमानों में एक साथ चार विवाह करना मान्य था। मुसलमानों की देखा देखी हिंदुओं के उच्च वर्ग में भी यह प्रथा व्याप्त हो गयी थी। हिंदुओं में पत्नी की मृत्यु के पश्चात् अथवा बांझ स्त्री का पति दूसरा विवाह कर सकता था। हिंदू अपनी उपजाति के बाहर, किंतु समग्र जाति के भीतर विवाह करता था। परंतु मुसलमान सगोत्रता, पोषण संबंध और रक्त संबंधों को छोड़कर विवाह कर सकता था। पुरुष अपनी उम्र से छोटी कन्या के साथ विवाह करता था, परंतु लालच अथवा अन्य कारणों से कभी कभी बेमेल विवाह भी हो जाया करते थे। हिंदू और मुसलमान दोनों में ही दहेज प्रथा प्रचलन में थी। दहेज में स्वर्णाभूषण, वस्त्र, वर्तन, हाथी-घोड़े, गाएँ इत्यादि तो दिये ही जाते थे, दास-दासियाँ भी दी जाती थीं। तुलसी के राम विवाह वर्णन और शिव विवाह वर्णन में इस प्रकार के दहेज देने का उल्लेख है, जो युग-सत्य को स्पष्ट करता है। मंथरा भी कैकेई के साथ दहेज में आई हुई दासी थी। सीता के विवाह में भी विभिन्न प्रकार का दायजा (दहेज) दिया गया था। 'मानस' में इसका स्पष्ट उल्लेख है-

**कहि न जाइ कछु दाइज भूरी।**

**रहा कनक मनि मंडपु पूरी**

**कंबल बसन बिचित्र पटोरे।**

**भाँति भाँति बहु मोल न थोरे ।।**

**गज रथ तुरग दास अरू दासी।**

**धेनु अलंकृत कामदुहा सी ।।**

**बस्तु अनेक करिअ किमि लेखा ।**

**कहि न जाइ जानहिं जिन्ह देखा।।'**

X X X

**तुरग लाख रथ सहस पचीसा ।**

**सकल संवारे नख अरू सीसा ।।**

**मत्त सहस दस सिंधुर साजे।**

**जिन्हहि देखि दिसिकुंजर लाजे ।।**

**कनक बसन मनि भरि भरि जाना।**

**महिषी, धेनु बस्तु विधि नाना ।।**

**दाइज अमित न सकिअ कहि दीन्ह बिदेहँ बहोरि।**

**जो अवलोकत लोकपति लोक संपदा थोरि।।**

X X X

**दासीं दास दिए बहुतेरे।**

**सुचि सेवक जे प्रिय सिय केरे ।।**

X X X

**दासीं दास तुरग रथ नागा।**

**धेनु बसन मनि बस्तु बिभागा ।।**

**अन्न कनकभाजन भरि जाना।**

**दाइज दीन्ह न जाइ बखाना ।।**

**दाइज दियो बहु भाँति पुनि कर जोरि हिमभूधर कह्यो।**

**का देउँ पूरनकाम संकर चरन पंकज गहि रह्यो।।**

इस दहेज प्रथा का भयावह रूप आज वर्तमान समाज में स्पष्ट रूप से परिलक्षित हो रहा है। पूर्व में यह प्रथा स्वैच्छिक थी, परंतु कालान्तर में यह अनिवार्य बनती चली गयी। हिन्दुओं में पहले पर्दा प्रथा नहीं थी, परंतु मुसलमानों के संपर्क में आने के कारण हिंदुओं में भी पर्दे का चलन प्रारंभ हो गया। अकबर ने बाल विवाह, अस्पृश्यता, जाति भेद जैसी प्रथाओं को रोकने का भरपूर प्रयास किया। उसने सती प्रथा को भी समाप्त करने तथा विधवा विवाह को प्रोत्साहित करने का प्रयास किया। परंतु हिंदुओं के कट्टरपन के कारण उसे इसमें वांछित सफलता प्राप्त नहीं हो सकी।

**(ग) धार्मिक परिदृश्य-** अकबर के पूर्व तक हिंदुओं पर अनेक धार्मिक प्रतिबंध थे। उन्हें पूजा करने, अपने धर्म स्थान बनाने तथा तीर्थ यात्रादि करने पर रोक थी। वे चोटी

नहीं रख सकते थे और तिलक नहीं लगा सकते थे। परंतु अकबर ने इन तमाम प्रतिबंधों को समाप्त कर अपनी उदारता का परिचय दिया। अकबर ने न केवल धार्मिक उदारता दिखाई, अपितु उसने स्वयं वैसा किया भी। "अकबर ने हिंदुओं के रीति रिवाजों और खान-पान को भी अपनाया। उसने लहसुन प्याज आदि का प्रयोग छोड़ दिया, हिंदू उत्सवों में भाग लेना आरंभ कर दिया, सूर्य को नमस्कार करना और तिलक लगाना शुरू कर दिया। उसने अपने महल की हिंदू रानियों को पूर्ण धार्मिक स्वतंत्रता दी। फलस्वरूप शाही महलों में भी विष्णु शिव आदि की उपासना होने लगी और अकबर स्वयं भी पति के रूप में अपनी बेगमों के धार्मिक कार्यों में सहयोग देने लगा। हिंदुओं का दिल जीतने के लिए अकबर ने हिन्दू देवी देवताओं और मंदिरों का पूरा सम्मान किया। समय-समय पर हिन्दू वेश भूषा धारण करने में भी उसने बड़ी रुचि ली। अकबर ने हिंदुओं के उद्‌गारों, उत्सवों और रीतिरिवाजों के प्रति आदर भाव और स्नेह व्यक्त करके इस्लाम के प्रति कोई अनादर नहीं किया। उसका ध्येय तो मुसलमानों और हिंदुओं के मेल मिलाप को बढ़ाना था। "11

पर, अकबर राजगद्दी पर बैठते ही उदार नहीं बना था। "उसकी राष्ट्र निर्माण-निर्माणकारी धार्मिक नीति का विकास उसके धार्मिक विचारों में परिवर्तन के साथ साथ हुआ और यह परिवर्तन एकाएक नहीं, बल्कि क्रमिक रूप से हुआ। प्रारंभ में अकबर इतना उदार और सहिष्णु नहीं था। इस्लाम के प्रति उसमें अगाध आस्था थी और उलेमाओं के प्रभाव से भी वह उन्मुक्त नहीं था। किंतु विभिन्न परिस्थितियों, राजनीतिक घटनाचक्रों आदि से उसके धार्मिक दृष्टिकोण में धीरे-धीरे परिवर्तन आया।" 12

अकबर ने घोषणा की थी कि उसके दरबार में कोई भी हिन्दू दरबारी अथवा सामंतादि तिलक लगाकर नहीं आयेगा। ओरछा के राजा मधुकर शाह कृष्णोपासक थे। वे नित्य पूजा करने के उपरांत तिलक लगाते थे और अकबर के दरबार में जाते थे।

अकबर की तिलक लगाकर दरबार में न आने की घोषणा के दूसरे दिन महाराज मधुकर शाह प्रतिदिन की अपेक्षा और बड़ा तिलक लगाकर दरबार में गये। अकबर ने देखा दरबार में उपस्थित सारे हिंदुओं का माथा तिलक विहीन है, पर मधुकर शाह प्रतिदिन की अपेक्षा अधिक बड़ा तिलक लगाकर आया है। अपनी आज्ञा का उल्लंघन होता हुआ देख अकबर आग बबूला हो गया और मधुकर शाह को दंडित करने की आज्ञा सुना दी। दरबार में उपस्थित सैनिक मधुकर शाह को गिरफ्तार करने जैसे ही आगे बढ़े, उन्होंने म्यान से

तलवार निकाल ली और ललकार कर अकबर को चुनौती दी "मैं अपने धर्म की रक्षा के लिए मारूँगा और मर जाऊँगा।" अकबर मधुकर शाह के साहस को देखकर हतप्रभ रह गया और तत्क्षण ही रंग बदलता हुआ बोला-मैं यह देखना चाहता था कि हिंदू अपने धर्म के प्रति कितना वफादार है।" और फिर अकबर ने अपनी राजाज्ञा वापस ले ली। ऐसी ही अनेक घटनाओं से अकबर के हिंदू विरोधी विचारों में परिवर्तन हुआ। सन् 1556 से सन् 1562 तक वह इस्लाम का कट्टर सुन्नी अनुयायी रहा। सन् 1562 के पश्चात् से उसका कट्टरपन कम होने लगा और उसमें उदारता का भाव उदय हुआ। सन् 1682 के पश्चात् उसने दीन-ए-इलाही धर्म की स्थापना की। परंतु उसके निधन के पश्चात् उसका 'दीन-ए-इलाही समाप्त हो गया। आज उसका केवल पुस्तकों में नाम शेष है।

जन साधारण में धर्म का परंपरागत रूप ही प्रचलित था। हिंदुओं के ढेर सारे देवी-देवताओं के मध्य राम और कृष्ण प्रतिष्ठा प्राप्त कर चुके थे। जनसाधारण इन्हीं के चारों ओर अपनी भावनाएँ केन्द्रित कर रहा था। कथा-वार्ता-माहात्म्य आदि का प्रचलन हो चुका था। हिंदुओं पर लगने वाले जजिया तथा तीर्थयात्रा करों को अकबर ने समाप्त कर दिया था जिससे हिंदू जनता अपने धार्मिक कृत्यों का निर्विघ्न और सोल्लास सम्पादन करती थी । जनसाधारण की ज्योतिषियों, तांत्रिकों तथा कर्मकाण्डी पुरोहितों व मुल्ला-मौलवियों पर अगाध श्रद्धा थी।

जहाँगीर ने भी अपने पिता की धार्मिक नीति का अनुसरण किया। परंतु फिर भी जहाँगीर के मन में कहीं-न-कहीं मुस्लिम कट्टरता का स्थान था। विभिन्न धर्मावलंबियों के मध्य धार्मिक वार्ता का जो क्रम अकबर ने प्रारंभ किया था उसे जहाँगीर ने सीमित कर दिया। इतना ही नहीं, जहाँगीर ने सिख और जैन धर्म के अनुयायियों पर अत्याचार भी किये। "खुसरो के विद्रोह के प्रति सहानुभूति दिखाने पर जहाँगीर ने सिखों के गुरु अर्जुनदेव को अपने सामने बुलाया और विद्रोह में भाग लेने का आरोप लगाकर मृत्यु दण्ड दे दिया।" 13 "जहाँगीर का जैनियों के प्रति व्यवहार खेद जनक रहा। जब खुसरों ने विद्रोह किया, तो कहा जाता है कि मान सिंह ने भविष्यवाणी की कि जहाँगीर का शासनकाल दो साल से अधिक नहीं चलेगा। यद्यपि जैन साधुओं के प्रति जहाँगीर कतिपय कारणों से, कुछ न कर सका, पर वह जैनियों के प्रति असहिष्णु हो गया। शासनकाल के बारहवें वर्ष में जहाँगीर जब गुजरात की यात्रा पर गया तो उसने जैनियों पर आरोप लग्गगया कि उन्होंने ऐसे मंदिरों और भवनों

का निर्माण किया है, जो विद्रोह के केन्द्र बने हुए थे। जहाँगीर ने जैनियों के धार्मिक नेताओं पर अनैतिक आचरण (संभवतः नग्न रहना) का आरोप लगाया और सामान्य रूप से जैनियों को हिंदुओं का एक कष्ट प्रद वर्ग माना। जहाँगीर ने मान सिंह को दरबार में बुलाया, किंतु भय खाकर जब उसने मार्ग में ही विष पान कर लिया तो जहाँगीर ने क्रुद्ध होकर जैनियों को शाही क्षेत्रों से बाहर निकाल देने का आदेश दे दिया।" 14

हिंदू समाज में शैव और वैष्णव सम्प्रदाय के मानने वाले लोग अधिक थे। आसाम और बंगाल में जादू-टोना और तंत्र मंत्र का प्रभाव अधिक था। उत्तरी भारत के प्रत्येक गाँव और कस्बों में शिव लिंगों की स्थापना थी। परंतु आश्चर्य यह है कि बौद्ध धर्म का प्रभाव और इसके अनुयायियों की संख्या कम ही थी।

**(घ) साहित्यिक परिदृश्य**

अकबर अधिक शिक्षित नहीं था, फिर भी वह फारसी और हिन्दी जानता था। उसके दरबार में गंग, तानसेन, टोडरमल, अब्दुर्रहीम खानखाना तथा बीरबल जैसे हिन्दी कविता के रत्न विद्यमान थे। इनकी देखा-देखी अकबर भी कविता करने लगा था। यद्यपि उसकी कविता काव्य-कला की दृष्टि से परिपक्क नहीं थी, फिर भी प्रमुख बात यह है कि उसने हिन्दी में कविता करने का प्रयास किया। अकबर की कविता का एक उदाहरण :

**शाह अकब्बर एक समै चले कान्ह विनोद विलोकन बालहिं।**

**आहट तें अबला निरख्यौ, चकि चौंकि चली करि आतुर चालहिं ।।**

**त्यौं बल बेनी सुधारि घरी सु भई छवि यौं ललना अरु लालहिं।**

**चम्पक चारु कमान चढ़ावत, काम ज्यौं हाथ लिये अहि बालहिं।। 15**

कविता जहाँगीर भी करता था। परंतु जहाँगीर की रुचि काव्य की अपेक्षा संगीत में अधिक थी। जहाँगीर की कविता का एक उदाहरण :

**सौतेन मध खेलत बाल भँवर**

**मानो फूली फुलवारी।**

**वन वन वनिता आयी है पियन मन भाई।**

**एकन सों नैन सैन, एकन सों पीठे बैन**

**एकन को पाछे तें अंक भरत**

**अचानक छवि भई दूनी**

**दूजे राग हिंडोल मिल गाई ।।**

**उत्तम मधुरित फूलीं इत काम की बेली**

**ऐसे प्रिय तिय दोउ भाँत एक सदाई।**

**अति सुख दयो दोउ विवसन**

**राइ सुल्तान सलीम पिय**

**रूसी है मनाई।/16**

अकबर के आदेश से अरबी, फारसी, संस्कृत और यूनानी भाषा के ग्रंथों में अनुवाद किये गये। प्राचीन ग्रंथों-'सिंहासन बत्तीसी', का अनुवाद सन् 1574-75 में 'खिरद-जज्जानामा के नाम से हुआ। अथर्ववेद का सन् 1575- 76 में, बाइबिल का सन् 1578 में, 'महाभारत' का सन् 1582-83 में, 'तुजुक ए-बाबरी का सन् 1589 में, कुरान का सन् 1591-92 में, 'पंचतंत्र' और 'कथासरित सागर' का सन् 1596 में अनुवाद हुआ। श्रीमद्भागवत गीता, रामायण, नल-दमयंती कथा आदि के भी अनुवाद कार्य हुए। तात्पर्य यह कि अनुवाद कार्य निरंतर चलता रहा।

यही वह काल था जब हिन्दी जगत में सूर, तुलसी, नंददास, कुंभनदास, चतुर्भुज दास, गोविंदस्वामी, छीतस्वामी, नरहरिदास, केशवदास जैसे शब्द साधकों ने हिन्दी साहित्य की अपने साहित्य के द्वारा श्रीवृद्धि की। इन भक्त कवियों ने हिन्दी जगत को श्रेष्ठ और कालजयी कृतियाँ दीं।

अकबर कला और साहित्य का पारखी था। उसने अनेक कवियों को आश्रय दिया। इस काल की जो उल्लेखनीय बात है वह है-देशी भाषा में साहित्य की सर्जना। इसके पूर्व तक संस्कृत में साहित्य सृजन होता था। परंतु इस काल में ब्रज और अवधी में काव्य लिखे गये। देशी भाषा में काव्य रचना तो हिन्दी साहित्य के आदिकाल से ही हो रही थी। तथापि तुलसी ने अवधी और सूर ने ब्रज भाषा को नई ऊँचाइयाँ प्रदान कीं। महाकवि केशव ने भी संस्कृत में काव्य रचना का मोह छोड़कर ब्रज भाषा में काव्य रचना की। इनकी ब्रज भाषा में बुँदेली बोली के शब्दों का बाहुल्य है। केशव ने स्वयं स्वीकार किया है-

**भासा बोलि न जानहीं जिनके कुल के दास।**

**ता भासा कविता करी जड़मति केसवदास ।।**

और तुलसी भी ऐसा ही कुछ कहते हैं-

**भासा बद्ध करबि मैं सोई। मोरे मन प्रतीत अस होई ।।**

भक्ति आंदोलन का प्रादुर्भाव तो यद्यपि संवत् 1350 के आसपास से प्रारंभ हो गया था, तथापि अकबर और जहाँगीर के काल में वह चरम पर

पहुँच गया था। एक और उल्लेखनीय बात यह हुई कि इस काल में गद्य का विकास भी हुआ।

इस काल के प्रमुख कवि व उनकी रचनाएँ निम्नानुसार हैं-

**गोस्वामी तुलसीदास-**रामचरितमानस, विनय-पत्रिका, गीतावली, दोहावली, कवितावली, जानकी मंगल, पार्वती मंगल, बरवै रामायण, रामलला नहछू, वैराग्य सांदीपनि, रामाज्ञा प्रश्न, हनुमान बाहुक

**सूरदास-**सूरसागर, सूरसारावली, साहित्य-लहरी केशव-रामचन्द्रिका, वीरसिंह देवचरित, जहाँगीर जस चन्द्रिका, रतन बावनी, कविप्रिया, रसिकप्रिया, छंदमाला, विज्ञान गीता रहीम-बरवै नायिका भेद, रहीम दोहावली, मदनाष्टक, गंग-चन्द छन्द बरनन की महिमा, नंददास-रास पंचाध्यायी, भ्रमरगीत

अकबर के दरबारी कवियों में रहीम, बीरबल और गंग के अतिरिक्त मनोहर कवि, जयराम, होलराय, टोडरमल, नरहरि बंदीजन आदि के उल्लेखनीय नाम रहे हैं। डॉ. रामकुमार वर्मा इस काल के साहित्य का मूल्यांकन करते हुए लिखते हैं- "अब तो राजाओं के आश्रित होकर नहीं, स्वयं अकबर के दरबार का सहारा पाकर कविगण अपने काव्य का चमत्कार स्वयंवर में आये हुए राजकुमार के कौशल की भांति प्रदर्शित करने लगे। धर्म की पवित्र भावना अब कला का रूप लेने लगी। अतः साहित्य अब अपने चमत्कार पूर्ण प्रदर्शन का मार्ग खोजने लगा। उसका उद्देश्य अब निश्चित न होकर विश्रृंखल हो गया। धर्म की भावना तो केवल नाम मात्र की रह गयी। तुलसी और सूर की प्रतिमा का प्रकाश अभी तक कवियों का पथ-प्रदर्शन कर रहा था, अतएव कविगण राम और कृष्ण का नाम तो नहीं छोड़ सके, हाँ राम और कृष्ण के भीतर छिपे हुए धार्मिक उन्मेष को अवश्य भूलने लगे। अब राम और कृष्ण की कविता पर अत्याचार के बदले पुरस्कार मिलने लगे। अकबर और रहीम भी कविता करने लगे

निष्कर्षतः अकबर और जहाँगीर का काल हिन्दी कविता के लिए स्वर्णकाल कहा जाने योग्य है।

**(ङ) सांस्कृतिक परिदृश्य**

अकबर के काल में हिन्दू-मुस्लिम संस्कृति के भावनात्मक एकीकरण का प्रयास हुआ। जो धर्म प्रेम और सहिष्णुता की वृद्धि में सहायक होता है, उस

धर्म के नाम पर हिन्दू-मुसलमानों का परस्पर रक्त बहा। अकबर ने दोनों धर्मों के मध्य समन्वय करने का प्रयास किया। न केवल धर्म अपितु भाषा, संगीत, शिल्पकला, चित्रकला आदि संस्कृति के द्योतक तत्वों में समन्वय करने का प्रयास किया।

**चित्रकला**

अकबर ने अपने समय में प्रचलित हिन्दू शैली की चित्रकला में ईरानी शैली की चित्रकला को समन्वित किया। कालान्तर में यह विशुद्ध भारतीय शैली में परिवर्तित हो गयी। अकबर स्वयं चित्रकार था, उसे चित्रकला में रुचि थी। 'अकबरनामा' में सत्रह चित्रकारों का उल्लेख प्राप्त होता है, जिन्हें राजाश्रय प्राप्त था। इस कला के संरक्षण-संवर्द्धन हेतु अकबर ने चित्रकला का एक पृथक् विभाग ही स्थापित कर दिया था। राजसभा, आखेट, नारियों का विविध श्रृंगार, अनेक प्रकार की आकृतियाँ युद्ध, धर्मचर्या आदि विविध विषय चित्रकला के होते थे।

जहाँगीर ने भी अकबर की चित्रकला विषयक रुचि को समृद्धि प्रदान की। अकबर की अपेक्षा जहाँगीर के शासनकाल में चित्रकला को अधिक संरक्षण व संवर्द्धन प्राप्त हुआ। "जहाँगीर के उत्साह एवं प्रोत्साहन के कारण चित्रकारों की दक्षता में अभिवृद्धि हुई। परिणामस्वरूप चित्रकला ईरानी प्रभाव से मुक्त हो गया। मुगल चित्रकला विशुद्ध भारतीय बन गयी। इसकी पद्धति और शैली भी नवीन रूप से विकसित हुई। जहाँगीर के सभी दरबारी चित्रकारों ने, चाहे हिन्दू हो या मुस्लिम, देशी हो अथवा विदेशी, चित्रकला में मौलिकता, स्वाभाविकता, गतिशीलता और सजीवता लाने का प्रयास किया है। "18

**संगीत**

चित्रकला की भाँति संगीतकला को भी अकबर और जहाँगीर ने हार्दिक रुचि के कारण प्रश्रय दिया। अकबर के दरबार के तानसेन और बैजू बाबरा तो प्रसिद्ध हैं ही, बाबा रामदास और सूरदास के नाम भी इतिहास प्रसिद्ध हैं। अकबर को बचपन से ही संगीत से सहज लगाव था। तानपुरा उसका प्रिय वाद्य था। नगाड़ा वादन में भी वह पारंगत था। अकबर के दरबार में सप्ताह भर संगीत चलता रहता था जो विभिन्न प्रकार के संगीत के लिए निर्धारित था। 'अकबरनामा' में उल्लेख है कि "हजरत बादशाह संगीत में बहुत दिलचस्पी

लेते हैं और उन सब लोगों को संरक्षण देते हैं जो इस कला में प्रवीण हैं। उनके दरबार में हिन्दू, ईरानी, तुर्की और कश्मीरी पुरुष स्त्रियाँ गायक रहते थे, लेकिन प्रसिद्ध संगीतकार केवल 36 थे जिनको राजकीय संरक्षण मिला हुआ था। 19 इन संगीतकारों में अधिकांश ग्वालियर और धार के थे।

अपने पिता की भाँति जहाँगीर भी श्रेष्ठ गायक और संगीत में रुचि रखने वाला था। अकबर की भाँति जहाँगीर को भी संगीत की सूक्ष्म समझ थी। जहाँगीर के दरबार में 'कान्हड़ा' सहित अन्य रागों के निर्माता तानसेन की भाँति कोई संगीतकार तो नहीं था, फिर भी अनेक संगीतज्ञ उसके आश्रय में थे। जहाँगीर ने संगीत के लिए अनेक राग-रागनियों में निबद्ध हिन्दी गीतों की रचना भी की थी। उदाहरणस्वरूप एक गीत पीछे 'साहित्यिक परिस्थितियाँ के अंतर्गत दिया गया है। जहाँगीर के शासनकाल में गजल, कब्बाली, ठुमरी आदि अत्यंत लोकप्रिय हुए। हिन्दू और मुसलमान संगीतकार का कोई भेद दरबार में नहीं था।

**स्थापत्य**

स्थापत्य कला की ओर से जहाँगीर प्रायः उदासीन-सा ही रहा। इस ओर अकबर की रुचि अधिक थी। अकबर के काल की अनेक सुन्दर इमारतें, किले, महल आदि अब भी उसके स्थापत्य कला को प्रदर्शित कर रहे हैं। अकबर ने सबसे पहले पन्द्रह लाख रुपये की लागत से अपने पिता हुमायूँ के मकबरे का निर्माण करवाया। काले और सफेद संगमरमर से निर्मित इस मकबरे की स्थापत्य कला बेजोड़ है। इसका धरातल भारतीय वास्तु शैली का है तथा मुख्य द्वार पर निर्मित बड़े बड़े कंगूरे और छतरियाँ ईरानी शैली की हैं।

अकबर ने स्वयं अपना मकबरा भी बनवाया था। आगरा-दिल्ली राज मार्ग पर स्थित सिकंदरा में यह मकबरा स्थित है जो पाँच वर्गाकार चबूतरों पर आधारित है। ये चबूतरे क्रमशः एक-एक कर ऊपर उठते हैं और आकार में छोटे होते जाते हैं। इसकी निर्माण शैली बौद्ध विहारों जैसी प्रतीत होती है। अकबर की मृत्यु के पश्चात् उसके बेटे सलीम जहाँगीर ने इसे पूर्ण करवाया था। मकबरे का ऊपरी भाग संगमरमर का बना हुआ है। हुमायूँ के मकबरे के चारों ओर जिस प्रकार सुन्दर उद्यान है, उसी प्रकार अकबर के इस मकबरे का उद्यान भी पर्यटकों को सहज ही अपनी ओर आकर्षित करता है। अकबर ने जितने भी भवनों का निर्माण कराया, उन सबमें फतहपुर सीकरी के भवन अत्यंत विख्यात हैं। माना जाता है कि संतान हीन अकबर को

सूफी संत सलीम शाह चिश्ती की कृपा से संतान प्राप्त हुई थी। अकबर ने इस प्राप्त संतान का नामकरण संत के नाम पर सलीम किया और संत सलीम चिश्ती की याद में फतहपुर सीकरी के भवनों का निर्माण कराया। यहाँ जितने भी भवन बने हुए हैं, वे सब लाल पत्थरों से निर्मित हैं। इन भवनों में विद्यालय के अतिरिक्त इबादत खाना, तालाब, मदरसा आदि तो हैं ही, परंतु सर्वाधिक प्रमुख हैं- बुलंद दरवाजा, जामा मस्जिद, सलीम चिश्ती की दरगाह और पुंच महल। बुलन्द दरवाजा गुजरात विजय के उपलक्ष्य में बनवाया गया था। जामा मस्जिद भारत की सबसे बड़ी और सर्वधिक सुन्दर मस्जिद है। पुंच महल बौद्ध बिहार शैली में निर्मित है तथा सलीम चिश्ती की दरगाह भी अत्यंत आकर्षक है। इन सब भवनों पर हिन्दू स्थापत्य शैली का स्पष्ट प्रभाव परिलक्षित होता है।

आगरा का किला भी अकबर के स्थापत्य प्रेम का श्रेष्ठ उदाहरण है। ढाई किलोमीटर की परिधि में यह दुर्ग विस्तारित है। किले की चौबीस फुट ऊँची दीवारों के भीतर बने भवनों में एक दीवान-ए-आम और एक दीवाने खास है। इस किले के दो प्रवेश द्वार है-दिल्ली दरवाजा और लाहौरी दरवाजा। आगे चलकर लाहौरी दरवाजे का नाम अमर सिंह दरवाजा हो गया। इलाहाबाद का किला भी भारतीय स्थापत्य का श्रेष्ठ नमूना है जिसमें चालीस खंभों वाला राजभवन है। यह- "आगरा फोर्ट' सन् 1564-65 में प्रारंभ हुआ और सन् 1572 में बनकर तैयार हुआ। अकबर द्वारा निर्मित शिल्पों में यह श्रेष्ठ शिल्प है।

उपर्युक्त प्रमुख निर्माणों के अतिरिक्त अजमेर, लाहौर, इलाहाबाद आदि स्थानों पर दुर्गों का निर्माण कराया। ये सब भारतीय वास्तु कला के अद्वितीय निदर्शन हैं।

परंतु जहाँगीर को स्थापत्य कला में विशेष रुचि नहीं रही और न ही उसने अकबर की भाँति महलों तथा दुर्गों का निर्माण कराया। फिर भी उसने अपने जीवनकाल में तीन महत्वपूर्ण इमारतों का निर्माण कराया। प्रथम तो अपने पिता के सिकंदरा स्थित अधूरे मकबरे को पूरा कराया। यमुना नदी के किनारे आगरा में एक उद्यान के बीचों बीच नूरजहाँ के पिता का भव्य मकबरा बनवाया। मकबरा, दो मंजिला समकोण भवन है। इसके चारों कोनों पर आठ भुजाओं वाली छोटी छोटी मीनारें हैं। पूरे मकबरे में सफेद संगमरमर का प्रयोग हुआ है। इस मकबरे में प्रयुक्त सफेद संगमरमर के बीच-बीच में विभिन्न रंगीन पत्थरों की पच्चीकारी है।

रावी नदी के तट पर निर्मित जहाँगीर द्वारा बनवायी गई तीसरी इमारत है, जो लाहौर में शाहदरा में स्थित है। इस मकबरे का निर्माण नूरजहाँ की देखरेख में हुआ था। इस मकबरे का स्थापत्य-शिल्प दर्शनीय है।

**पर्व और उत्सव**

साथ-साथ रहते-रहते हिन्दू मुसलमान सांस्कृतिक रूप से अति निकट आ गये थे। दोनों के धार्मिक विश्वासों ने परस्पर एक दूसरे को प्रभावित किया। अकबर और जहाँगीर के शासन काल में हिन्दू जनता मुसलमानों की मजारों पर जाने लगी थी, और उनके पीर औलियाओं को श्रद्धा देने लगी थी। मुस्लिम जनता भी हिन्दू साधुओं के चमत्कारों को सजदा करने लगी थी। इतना ही नहीं दोनों के ही व्रतों और पर्वों में दोनों सम्प्रदायों की जनता सोल्लास भाग लेने लगी थी। अकबर स्वयं होली पर्व के अवसर पर होली खेलता था और प्रजा इसमें सम्मिलित होती थी। विभिन्न प्रकार के मेलों का आयोजन भी राज्य में होता था। जहाँगीर ने भी इस प्रथा को जारी रखा। उसने मुस्लिम और हिन्दू प्रजा को अपने मेले तथा पर्वोत्सव सार्वजनिक रूप से मनाने की अनुमति प्रदान की। इतना ही नहीं, अकबर की भाँति वह स्वयं भी इन त्यौहारों में कभी-कभी सम्मिलित होता था। अपने शासन काल के सातवें वर्ष में जहाँगीर ने पहली बार राखी उत्सव मनाया और स्वयं भी राखी बँधवायी।

खान-पान और वेशभूषादि में भी दोनों सम्प्रदायों का समन्वय हुआ। "अचकन (शेरवानी), चूड़ीदार पायजामा, गरारा, सलवार, नाक-कान के आभूषण, भोजन के विभिन्न व्यंजन जैसे-पुलाव, मिष्ठान इत्यादि हिन्दुओं और मुसलमानों के द्वारा भेदभाव रहित प्रयोग में लिये जाने लगे। हिन्दू धर्म और हिन्दू संस्कृति का प्रतीक ताम्बूल, मुसलमानों का प्रिय 'पान' बनकर उनके जीवन का अंग बन गया। विदेशी यात्री इब्नबतूता के शब्दों में-हिन्दुओं की पान खाने और अतिथियों को बीड़ा देने की प्रथा को मुसलमानों ने अपना लिया और उसका उनमें बहुत प्रचार हो गया।"20

अकबर और जहाँगीर के काल में जहाँ धार्मिक और कलात्मक सांस्कृतिक समन्वय हुआ, वहीं भाषायी समन्वय भी दृष्टिगोचर होता है। अरबी-फारसी और हिन्दी से मिश्रित एक नई भाषा उर्दू का उदय हो रहा था, जिसकी लिपि तो फारसी थी, परंतु बोलचाल में वह हिन्दी के निकट थी। संस्कृत का महत्व भी इस काल में कम नहीं हुआ था। तुलसी का 'रामचरित मानस' इस भाषायी

समन्वय का उत्कृष्ट उदाहरण है। इसमें देशज भाषा (अवधी) का प्राधान्य तो है ही, संस्कृत, खड़ी बोली, अरबी तथा फारसी के शब्दों को इस कुशलता से सजाया गया है कि लगता ही नहीं है कि तुलसी ने विदेशी शब्दों का प्रयोग किया होगा। इन विदेशी शब्दों को भी तुलसी ने स्वदेशी बनाकर प्रस्तुत किया है-

| | |
|---|---|
| असमंजस अस मोहि अँदेसा | अँतेशा |
| सत्य कहहुँ लिखि कागद कोरे | कागज |
| लोकप जाके बंदीखाना | खाना |
| गई बहोर गरीब निवाजू | - गरीबनिवाज |
| सो जाने जनु गरदन मारी | गरदन |
| मनहुँ पारिनिधि बूड़ जहाजू | जहाज |
| जगमगत जीन जड़ाव जोति | जीन |
| सुमोति मनि मानिक लगे | |
| सजहुँ बरात बजाय निसाना | निशान |
| बाज नफीरी भेदि अपारा | नफीरी |
| गवने भरत पयादेहि पाये | पयादा |
| कुंभकरन कपि फौज बिडारी | – फौज |
| बना बाजारू न जाय बखाना | बाजार |
| भइ बकसीस जाचकन दीन्हा | बखशीश |
| जनु बिनु पंख विहंग बेहालू | बेहाल |
| जो कह झूठ मसखरी जाना | मसखरी |
| सनकारे सेवक सकल चले स्वामि रूष पायरुख | |
| रिपुदल बधिर भये सुनि सोरा | शोर |
| आज करहुँ तोहि काल हवाले | हवाले। 21 |

इस प्रकार के भाषायी समन्वय के अतिरिक्त सूफी संतों और कवियों ने भी इस गंगा जमनी संस्कृति को पोषित किया। "सूफी संतों के प्रयत्नों के परिणाम स्वरूप भावनात्मक एकता का मार्ग प्रशस्त हुआ। ये संत हिन्दू धर्म के सिद्धांतों की अपेक्षा हिंदुओं के रीति रिवाजों में अधिक रुचि रखते थे। उनकी हिन्दू रहस्यवाद को जानने की तीव्र उत्त्कण्ठा ने भाषायी भेदभाव को समाप्त किया। शहरी सामाजिक दोषों को दूर कर सूफी संतों ने नैतिक जीवन व्यतीत करने का उपदेश दिया। परिणामतः इन लोगों ने दास प्रथा, पूँजी के संचय, कालाबाजारी, मुनाफाखोरी, मदिरापान और यौन अपराधों के विरूद्ध जनमत

एवं वातावरण बनाने में योगदान दिया था। शहरी आबादी के बाहर सूफी संतों की खानकाहों में भ्रातृत्व का उपदेश प्रसारित किया जाता था। यह संदेश निराशा और पद दलित हिंदुओं के लिए आशा का दीपक था। खानकाहों में शरीफ (उच्च वर्ग) और राजिल (निम्न वर्ग) के बीच में किसी प्रकार का भेदभाव नहीं किया जाता था। अतएव प्रो. गिब का यह विचार बहुत कुछ अंश तक सत्य है कि सूफी संतों ने सामाजिक एवं सांस्कृतिक समन्वय की पृष्ठभूमि तैयार की है। "22 सूफी संत और दरवेशों में विशेष रूप से फतहपुर सीकरी के सन्त सलीम चिश्ती और अजमेर के शेख मुईनुद्दीन चिश्ती का प्रभाव विशेष रूप से प्रजा के अतिरिक्त सम्राटों व बादशाहों पर रहा। अकबर के दरबार के शेख मुबारक और इनके दोनों पुत्रों-अबुल फजल और फैजी सूफीमत के अनुयायी थे।

वस्तुतः अकबर और जहाँगीर के शासन काल में एक ऐसी संस्कृति आकार ले रही थी जो न तो पूरी तरह हिन्दू संस्कृति थी और न ही पूरी तरह मुस्लिम संस्कृति। इन दोनों संस्कृतियों के मेल और समन्वय से जो संस्कृति बन रही थी, वह थी-हिन्दुस्तानी संस्कृति। भाषा, साहित्य, धर्म, कर्मकाण्ड, पर्व-त्यौहार, खान-पान, वेशभूषा, पूजा, रीति-रिवाज-तमाम क्षेत्रों में परिवर्तन हो रहा था। इस परिवर्तन का प्रभाव इस काल के कवियों और साहित्य पर पड़ा।

### (च) युगीन परिदृश्य में नारी की स्थिति

विवेच्य काल के पूर्व से ही नारी की स्थिति समाज में सम्मान जनक नहीं रही। तुर्कों के आक्रमण के पूर्व भारतीय राजाओं में कुछ राजा ही ऐसे हुए हैं जिन्होंने नारी को सम्मान और प्रतिष्ठा प्रदान की है अन्यथा नारी को मात्र भोग्या और पति के चरणों की दासी ही समझा गया। तुर्कों एवं अन्य विदेशी आक्रांताओं के भारत भूमि पर पैर रखने के पश्चात् इन आततायियों ने देश का धन तो लूटा ही, देश की स्त्रियों की अस्मिता से भी जी भरकर खिलवाड़ की। मुगलों का आधिपत्य होने तक यह क्रम सतत् चलता रहा। मुगलों के आतंक के कारण हिन्दू नारियाँ घर की चार दीवारी में कैद होने को विवश हो गयीं। उनकी स्वतंत्रता पर कठोर प्रतिबंध लगा दिये गये। यद्यपि मुस्लिम स्त्रियाँ भी बुरका पहनने लगी थीं और पर्दा प्रथा इनमें भी प्रारंभ हो गयी थी। पर, मुस्लिम स्त्रियों को हिन्दू स्त्रियों की भाँति किसी प्रकार का कोई भय नहीं था। "कुमारी कायर का मत है कि मुसलमानों के आगमन से पूर्व भारतीय स्त्रियाँ स्वतंत्र घूमती थीं। लेकिन मुँह को कपड़े से ढंककर घूँघट का प्रारंभ मध्यकाल में

हुआ। इसी समय डॉ. अशरफ के अनुसार-हरम एक अलग भवन अथवा भवन के पृथक् भाग को कहा जाता है, जहाँ स्त्री दास, हिजड़े और अन्य स्त्रियाँ रखी जाती थीं। शाही हरम में पर्दा प्रथा का जन्म हो चुका था। फिरोज तुगलक ने अपनी प्रजा के लिए परदा करने के आदेश जारी किये थे। उस समय उनका दरगाह इत्यादि में जाना बंद कर दिया गया था। फत्हात- ए-फीरोजशाही' के अनुसार ये आदेश इसलिए दिये गये थे कि शरियत में स्त्रियों को बाजारों में खुले मुँह जाने से गुंडे और बदमाशों को छेड़छाड़ करने की उत्तेजना मिलती है। लेकिन पर्दा प्रथा केवल उच्च वर्ग तक ही सीमित रही। कृषक स्त्रियों का विशाल समूह पर्दा नहीं करता था। उच्च वर्ग में पर्दा का मापदण्ड यह था कि जिस परिवार की जितनी ऊँची स्थिति होगी, उतनी ही ऊँची खिड़कियाँ रहेंगी और स्त्रियाँ उतनी ही अलग रहेंगी। इसी समय बुर्का, पालकी और डोली का रिवाज भी प्रारंभ हुआ। हिन्दुओं में पर्दा का कारण यह भी हो सकता है कि मुसलमान उनकी स्त्रियों को बुरी दृष्टि से देखते थे या उन्हें बल पूर्वक हरम में बुलवा लेते थे। पर्दा स्त्री को अपनी तरूणावस्था में ही करना पड़ता था। जब वह सन्तानोत्तपति की आयु पार कर जाती थी तो वह परदा छोड़ सकती थी। 23 अपने स्त्रीत्व की रक्षार्थ हिन्दू स्त्रियाँ जौहर पहले भी करती थीं। अलाउद्दीन के चित्तौड़ पर आक्रमण करने से उपजे संकट में पद्मिनी सहित हजारों स्त्रियों के किले में ही जौहर करने के इतिहास सम्मत प्रमाण हैं। ऐसे जौहर देश में अन्य अनेक स्थलों पर भी हुए। मुस्लिम आक्रांताओं से अपनी कन्याओं को सुरक्षित रखने की दृष्टि से हिन्दुओं ने उनका बाल विवाह करना प्रारंभ कर दिया। परिणाम इसका यह हुआ कि रूढ़ि और परंपरा बनकर यह कुरीति आज भी हमारे समाज में कुरीति के रूप में व्याप्त है।

इस्लाम में बहु पत्नी प्रथा धार्मिक मान्यता प्राप्त है। इसका परिणाम यह हुआ कि बादशाहों के हरम सुंदर स्त्रियों से सजने लगे। एक एक बादशाह की एक से अधिक विवाहित बेगमें तो हुआ ही करती थीं, दासियों तथा हरमों में भी पशुओं की भाँति सुंदर स्त्रियों का जमावड़ा रहता था। मुगल सम्राटों की देखा-देखी हिन्दू राजाओं, सरदारों, सामंतों, जागीरदारों, यहाँ तक कि छोटे-छोटे मैदानी सरदारों-किलेदारों में भी अधिक से अधिक स्त्रियों के हरम सजाने की होड़ मच गयी। आमेर के राजा मानसिंह कछवाह के हरम में लगभग एक हजार पाँच सौ स्त्रियाँ रहती थीं। अन्य राजाओं के हरम भी इसी प्रकार सजे रहते थे।

मुगल काल में स्त्रियों की दशा में कोई परिवर्तन नहीं हुआ। अकबर और जहाँगीर के शासनकाल में भी स्त्रियों की सामाजिक दशा पूर्ववत् ही रही। नारी पुरुष की मात्र भोग्या थी। पुत्री का विवाह माता-पिता की इच्छा से होता था। स्त्री को अपना जीवन साथी चुनने का अधिकार नहीं था। बचपन में विवाह या बेमेल विवाह होने पर, पति कैसा भी हो, स्त्री को उसे जीवन भर ढोना पड़ता था। इन कारणों से युवावस्था आते आते लड़की विधवा हो जाती थी। इस प्रकार समाज में विधवाओं की संख्या बढ़ रही थी। हिन्दू समाज में इन विधवाओं को अत्यंत निरादर, अपमान और हेय दृष्टि से देखा जाता था। विधवाएँ श्वेत वस्त्र धारण करती थीं, सादा भोजन करती थीं और उन्हें सादा जीवन व्यतीत करना पड़ता था। ये किसी मांगलिक कार्यों में भाग नहीं ले सकती थीं। हिन्दू समाज में विधवा विवाह वर्जित था। परंतु मुस्लिम समाज में विधवा विवाह और तलाक दिलवाकर मनपसंद स्त्री के साथ विवाह करने की परंपरा चल पड़ी थी।

निःसंतान और केवल कन्या जनने वाली स्त्री को भी समाज में हेय दृष्टि से देखा जाता था। कन्या ही कन्या जनने के कारण स्त्री को दोषी मानकर उसे प्रताड़ित किया जाता था। इतना ही नहीं, एक पुत्र की चाहत में पुरुष, एक पत्नी के रहते दूसरा विवाह और तीसरा-चौथा विवाह भी कर लेता था। समाज में सती प्रथा भी प्रचलन में थी, परंतु अकबर ने इस प्रथा के साथ साथ बाल-विवाह तथा दहेज प्रथा को भी प्रतिबंधित किया था। डॉ. के. एम. अशरफ इस काल में स्त्रियों की दशा का मूल्यांकन करते हुए लिखते हैं- "एक बार स्त्री का व्यक्तित्व दबा देने पर स्त्री पुरुष के बीच असहमति का अंदेशा नहीं रह जाता था। उसे जन्म से ही असहाय और अबला होने का बोध कराया जाता था। पर्दा प्रथा ने उसके उन्मुक्त विचरण पर रोक लगा दी थी। उसे बौद्धिक और सांस्कृतिक विकास की सुविधाएँ उपलब्ध नहीं हो सकती थीं। जन्म से मृत्यु तक उसे पुरुष के अधीन रहना पड़ता था। इसी काल में रखैल प्रथा आरंभ हो गयी जिसने घर की शांति को भी समाप्त कर दिया। संगीत और नृत्य के प्रति पुरुषों के बढ़ते आकर्षण ने समाज में नर्तकियों का वर्ग उत्पन्न कर दिया, जो कालान्तर में पातरों के नाम से प्रचलित हुआ। इस प्रकार नारी के सामाजिक सम्मान में भी गिरावट आई। वह असूर्य स्पर्शी बन गयी।"24

संगीत और नृत्य के प्रति पुरुषों के आकर्षण ने वेश्यावृत्ति को भी जन्म दिया। यद्यपि संगीत और नृत्य विशुद्ध रूप से कला है, परंतु इस कला में

संलग्न स्त्रियाँ धीरे-धीरे वेश्यावृत्ति में लिप्त हो गयीं। परंतु कुछ स्त्रियाँ ऐसी भी थीं जिन्होंने अपनी कला आराधना को ही अपना सर्वस्व माना और कला की पावनता तथा अपने स्त्रीत्व की रक्षार्थ राज वैभव भी ठुकरा दिया। अकंबर के राजकाल की तीन नारियों के उल्लेखनीय नाम हैं, जिन्होंने अपने कृतित्व से अपने नाम इतिहास के पन्नों पर स्वर्णाक्षरों से लिखवाये। इन नारियों में एक महारानी दुर्गावती थीं, जिन्होंने अकबर की अधीनता को स्वीकार नहीं किया और अपने प्राणों का उत्सर्ग कर दिया। दूसरा उल्लेखनीय नाम है-माण्डू की रानी रूपमती का। रानी रूपमती माण्डू के सुल्तान बाज बहादुर की प्रेयसी और पत्नी थी तथा अत्यंत विदुषी, संगीतज्ञ व मधुर गायिका थी।

रूपमती को प्राप्त करने के लिए अकबर ने पहले तो प्रबल प्रलोभन दिये। परंतु रूपमती ने इन सबको ठुकरा दिया। इसके पश्चात् उसने माण्डू पर आक्रमण कर दिया। बाज बहादुर की छोटी-सी सेना अकबर की विशाल सेना के सम्मुख कब तक टिकती? बाज बहादुर पराजित हुआ। इधर रूपमती ने भी अपनी इहलीला समाप्त कर ली। अकबर की सेना को केवल उसकी मृत देह मिली। अकबर हाथ मलता रह गया। माण्डू की रानी रूपमती की ही भाँति बुंदेलखण्ड के ओरछा राज्य की ऐतिहासिक घटना अकबर की नारी के प्रति निर्मम दृष्टि को स्पष्ट करती है।

महाकवि केशव की जन्म-भूमि और कर्मभूमि ओरछा (जो आज मध्यप्रदेश के टीकमगढ़ जिले में है और रामराजा मंदिर के लिए जाना जाता है) में महाराज वीरसिंह शासक थे। इनके भाई इन्द्रजीत सिंह कछौवा के जागीरदार थे परंतु अधिकांश समय इनका ओरछा में ही व्यतीत होता था। राय प्रवीण नामक अत्यंत सुंदरी, नृत्यांगना, गायिका और कवयित्री इन्हीं इन्द्रजीत सिंह की प्रेयसी थी। राय प्रवीण कवि केशव की शिष्या थी। कवि केशव ने राय प्रवीण को काव्य की शिक्षा देने के लिए ही रसिकप्रिया और कविप्रिया ग्रंथों की रचना की थी।

राय प्रवीण के गुणों की और सुंदरता की सुगंध अकबर तक पहुँची। अकबर उसे पाने के लिए उतावला हो उठा। उसने ओरछा दरबार को सूचना भिजवायी कि राय प्रवीण को भेज दे अथवा युद्ध के लिए तैयार रहे। संदेश प्राप्ति के पश्चात् जितने दिन का विलंब होगा, उतना ही आर्थिक दण्ड भी भरना पड़ेगा।

ओरछा छोटा राज्य था। वह न तो अकबर से टकरा सकता था और न ही दण्ड की लाखों रुपयों की राशि का जुर्माना भर सकता था। नरेश ने राय प्रवीण को अकबर के दरबार में भेजने का निर्णय कर लिया, परंतु राय प्रवीण ने इस निर्णय को ठुकरा दिया। राय प्रवीण थी तो राजघराने की नर्तकी और इन्द्रजीत सिंह की प्रेयसी, परंतु वह उन्हें हृदय से पति मान बैठी थी और पातिव्रत्य धर्म का पालन करने के लिए कटिबद्ध थी।

इन्द्रजीत सिंह द्वारा राज्य के हित का वास्ता देने पर राय प्रवीण अकबर के दरबार में पहुँची। अकबर उसके सौंदर्य को देखकर दंग रह गया। उसने एक बार पुनः राय प्रवीण से प्रणय निवेदन करते हुए उसे अपनी बेगम बनाने तक का प्रलोभन दिया, किंतु राय प्रवीण अपने फैसले से टस-से-मस नहीं हुई। अकबर ने उसे अपनी काव्य-कला का प्रदर्शन करने को कहा। राय प्रवीण ने अत्यंत निडरता पूर्वक एक दोहा दरबार में प्रस्तुत किया-

**विनती रायप्रवीण की सुनिये शाह सुजान।**

**जूठी पातर भखत हैं बारी वायस स्वान ।।**

अर्थात् हे शाह अकबर ! राय प्रवीण की विनती सुनिये। जूठी पत्तल को तो बारी (पत्तल उठाने वाले उस काल की निम्न जाति), वायस (कौआ) और कुत्ते खाते हैं। अर्थात् मैं तो पूर्व से जूठी हूँ। यदि आप इन तीन में से कोई हैं तो मुझे स्वीकार करें।

अपने ही दरबार में अपना अपमान होता देख अकबर मारे क्रोध के तमतमा गया। उसने राय प्रवीण से कहा-नादान औरत, मैं हिन्दुस्तान का शहंशाह। मैं तुझे जबरन पकड़वाकर हरम में भेज सकता हूँ। फिर तू क्या करेगी?

राय प्रवीण ने अपनी छाती में छुपाकर रखी कटार निकालकर तत्क्षण कहा-बादशाह हुजूर, आपके सैनिकों के नापाक हाथ मुझे पकड़ने मेरे शरीर पर पड़ें, इसके पूर्व ही मैं अपनी जीवन लीला समाप्त कर लूँगी। राय प्रवीण का साहस देखकर अकबर ने तत्क्षण अपना पैंतरा बदला। बोला-मैं तो केवल यह परीक्षा ले रहा था कि भारत की नारी में कितना दम है। माँगो, क्या माँगती हो ?

राय प्रवीण बोली-हुजूर, मेरी मातृभूमि ओरछा राज्य पर आक्रमण न हो, उस पर लगाया गया दण्ड माफ किया जाए और आपके द्वारा किसी नारी का ऐसा अपमान न किया जाए।

अकबर ने राय प्रवीण की तीनों माँगें स्वीकार करते हुए उसे ससम्मान

वापस भेज दिया। राय प्रवीण तो अपने बुद्धि-चातुर्य से अकबर की अंकशयिनी होने से बच गयी। पर दुर्गावती और रानी रूपमती को अपने प्राणों की बलि देनी पड़ी।

तात्पर्य यह कि विवेच्य काल अकबर और जहाँगीर का काल था। इस काल में नारियों को भोग्या से अधिक न राजा समझता था और न प्रजा। रावण द्वारा सीता हरण का प्रसंग क्या उस युग सत्य को ध्वनित नहीं करता है? परंतु यदि सीता ने पुरुष के अन्याय का प्रतिकार किया तो दुर्गावती, रूपमती और राय प्रवीण ने भी अन्याय का प्रतिकार किया।

तुलसी की काव्य-कृतियों पर और विशेष रूप से 'रामचरितमानस' पर अपनी युगीन परिस्थितियों का प्रभाव पड़ा है 'रामचरितमानस' के विभिन्न प्रसंगों में यह प्रभाव स्पष्टतः परिलक्षित होता है।

**संदर्भ :**


1. मध्यकालीन भारतीय इतिहास डॉ. बी. एस. भार्गव, पृ. 200

2. रामचरितमानस: तुलसी, (उत्तरकाण्ड 100 ख/5)

3. मध्यकालीन भारतीय इतिहास डॉ. बी. एस. भार्गव, पृ. 240

4. वही, पृ. 403

5. वही, पृ. 238

6. वही, पृ. 244

7. रामचरितमानस: तुलसी, (बालकाण्ड 325 1-3)

8. वही, (बालकाण्ड 332/3, 4-333)

9. वही, (बालकाण्ड 338/1)

10. वही, (बालकाण्ड 100/4)

11. मध्यकालीन भारतीय इतिहास डॉ. बी. एस. भार्गव, पृ. 250

12. वही, 248

13. वही, 256

14. वही, 257

15. सामाजिक समरसता में मुसलमान हिंदी कवियों का योगदान: डॉ. लखनलाल खरे, पृ. 60

16. वही, पृ. 61

17. हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास डॉ. रामकुमार वर्मा, पृ. 598

18. मध्यकालीन भारतीय इतिहास डॉ. बी. एस. भार्गव, पृ. 366

19. अकबरनामा अबुल फजल, पृ. 17

20. मध्यकालीन भारतीय इतिहास डॉ. बी. एस. भार्गव, पृ. 354

21. हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास डॉ. रामकुमार वर्मा, पृ. 457

22. मध्यकालीन भारतीय इतिहास डॉ. बी. एस. भार्गव, पृ. 355

23. वही, पृ. 396

24. हिन्दुस्तान के निवासियों का जीवन और उनकी परिस्थितियाँ: डॉ. के. एम्. अशरफ, पृ. 220

## चतुर्थ अध्याय

# तुलसी की दृष्टि और मानस के नारी-पात्र

तुलसी के समय की राजनीतिक और सामाजिक स्थिति का चित्रण पूर्व में किया जा चुका है। इस चित्रण में नारी की स्थिति का मूल्यांकन भी किया जा चुका है। तुलसी ने अपने साहित्य में नारी को जिन रूपों का ग्रहण किया है, उसके अनुसार उनके आलोचकों के स्पष्ट रूप से दो वर्ग हैं। एक वर्ग तुलसी को नारी विरोधी सिद्ध करता है, तो दूसरा वर्ग इस तथ्य को मिथ्या ठहराने का उद्यम करता है। इन दोनों की विवेचना करने के पूर्व 'मानस' के नारी पात्रों का परिचय ज्ञात करना समीचीन होगा :

### (क) मानस के नारी-पात्र

मानस के नारी-पात्रों को दो श्रेणियों में रखा जा सकता है-आदर्श पात्र और आदर्श से हीन पात्र। पार्वती, कौशल्या, सुमित्रा, सीता, अनुसूया, मंदोदरी, शबरी व त्रिजटा आदि तुलसी की दृष्टि में आदर्श नारी पात्र हैं। कैकेई, मंथरा, अहल्या, शूर्पणखा इस श्रेणी से बाहर हैं। एक और बात है। जो नारी पात्र भारतीय संस्कृति और परंपरा को स्वीकार करते हैं और जो तुलसी के इष्ट श्रीराम से संबंधित हैं, वे तुलसी की दृष्टि में श्रेष्ठ नारी पात्र हैं। तुलसी ने इन नारी पात्रों को स्वतंत्र, पवित्र, मर्यादित तथा आदर्श की भावभूमि पर उतारा है। इनमें त्याग, करुणा, ममता और वात्सल्य का प्राधान्य है।

दोनों प्रकार के पात्रों का परिचय निम्नानुसार है-

### 1. कौशल्या

अवध के राजा दशरथ की तीन रानियों में श्रेष्ठ हैं-कौशल्या। कौशल्या अत्यंत विवेकशीला हैं। पुत्र राम को जब वन गमन की आज्ञा राजा और रानी द्वारा दी जाती है, तब वे अपना कर्तव्य स्थिर नहीं कर पातीं। परंतु शीघ्र ही

उनका बोध जाग्रत होता है और पुत्र प्रेम को एक ओर कर कर्तव्य को प्रधान समझते हुए राम को वन जाने की आज्ञा वे तत्क्षण देती हैं-

**जौं पितु मातु कहेउ बन जाना।**

**तौ कानन सत अवध समाना।।**

'मानस' प्रारंभ करने के पूर्व तुलसी चराचर की पृथक् पृथक् वन्दना करते हैं। इसी क्रम में वे कौशल्याजी की वन्दना करते हुए उनकी तुलना 'पूर्व दिशा से करते हैं:

**बंदउँ कौसल्या दिसि प्राची।**

**कीरति जासु सकल जग माची।।**

कौशल्या की महिमा इसी से स्पष्ट है कि तुलसी ने उनकी वन्दना में पूरी एक चौथाई की रचना की, जबकि अन्य रानियों को बिना उनका नाम लिये 'सब रानी' कहकर इतिश्री कर ली-

**दसरथ राउ सहित सब रानी।**

**सुकृत सुमंगल मूरति मानी।**

कौशल्या बड़ी रानी हैं। रनिवास में उनका अन्य रानियों की अपेक्षा उच्च स्थान है। उनमें 'बड़े की तरह ही बड़प्पन है, धैर्य है, विवेक है और त्वरित कर्तव्य बुद्धि है।

**2. सुमित्रा**

सुमित्रा राजा दशरथ की सबसे छोटी रानी थी। तुलसी ने सुमित्रा का चरित्रांकन अधिक नहीं किया। सुमित्रा के जो भी दृश्य तुलसी ने प्रस्तुत किये हैं उनसे यही विदित होता है कि ये अत्यंत उदार थीं। अपने पुत्र लक्ष्मण को राम के साथ वन भेजने में उन्हें कोई विषाद नहीं होता, अपितु लक्ष्मण जब राम के साथ वन जाने की बात कहते हैं, तब वे अपने पुत्र की प्रशंसा करती हैं।

**3. पार्वती**

पार्वती 'मानस' की मूल कथा से इतर प्रकारांतर कथा की मूल नायिका है। नारी की पति निष्ठा का आदर्श पार्वती के रूप में मानस में प्रस्तुत किया गया है। परंतु नारी की सहज दुर्बलताओं को पार्वती के रूप में प्रस्तुत किया गया है। नारी की दुर्बलता संशय :

**सुनहि सती तव नारि सुभाऊ ।**

**संसय अस न धरिअ उर काऊ ।।**

चारी को स्वयं को जड़ और अन्य समझचा

**सती हृदयें अनुषान किय लबु जावेत सर्वच्य।**

**कीस कच्द्र में सतु सच कारि सहज जड़ अन्य।।**

### 4. सीता

सीता समचरितमानस' महाकाव्य की नायिका और तुलसी के आराध्य श्रीराम की पत्नी हैं। तन्दन्ना के क्रम में तुलसी निम्नानुसार बन्चना करते हैं सीता की

**जनकपुत्ता जय जचचि जाचकी।**

**अतिशय प्रिय करुणाविधान की।।**

**ताके जूस पद कमल मवावरों।**

**जासु कृपाँ निस्सल मति पावतें।।"**

सीता के रूप में तुलसी ने भारतीय नारी के आदर्श को प्रस्तुत किया है। सीता और राम को भारतीय वाङ्मय ने माया और ब्रता के रूप में देखा है। तुलसी ने भी यही भाव प्रस्तुत किये हैं।

**उभय बीच सिय सोहति कैसे।**

**ब्रह्म जीव बिच माया जैसें ।।**

### 5. अनुसूया

'मानस' के कथानक में अनुसूया की कोई सीधी भूमिका नहीं है। अरण्यकाण्ड में अत्रि मुनि के आश्रम में राम सीता लक्ष्मण जाते हैं। यहाँ अनुसूया सीता को नारी धर्म से परिचित कराती हैं। यह नारी धर्म का उपदेश परंपरागत है-पति के प्रति पूर्ण समर्पण। लगता है, अपने नारी धर्म संबंधी विचारों के प्रकाशनार्थ तुलसी ने सीता-अनुसूया मिलन प्रसंग की उदद्भावना की है।

### 6. मंदोदरी

मंदोदरी मय दानव की पुत्री है, रावण की पत्नी है और अनिंद्य सुन्दरी है। तुलसी ने मंदोदरी का यही परिचय 'मानस' में दिया है-

**मय तनुजा मंदोदरि नामा।**

**परम सुंदरी नारि ललामा ।।**

**हरषित भयउ नारि भलि पाई।**

**पुनि दोउ बंधु बिआहेसि जाई ।।**

यहाँ तुलसी, मंदोदरी को 'नारि भलि' कहकर उसे नारी के भले गुणों से विभूषित करते हैं। यही कारण है कि सीता हरण के पश्चात् मंदोदरी बार- बार अपने पति को राम से वैर न करने के लिए प्रार्थना करती है, इसीलिए मंदोदरी श्रेष्ठ नारी वर्ग में परिगणित है।

### 7. शबरी

शबरी तुलसी के कठोर वर्ण-व्यवस्था वाले काल में शूद्र कहे जाने वाले वर्ग की आदिवासी महिला है। वह स्वयं को 'अधम' आदि हीन शब्दों से संबोधित करती है:

**केहि बिधि अस्तुति करौं तुम्हारी।**

**अधम जाति मैं जड़मति भारी ।।**

**अधम ते अधम अधम अति नारी।**

**तिन्ह महँ मैं मतिमंद अधारी।।**

परंतु यह 'अधम से अधम नारी' तुलसी के इष्ट की भक्त है, अतः कवि की दृष्टि में श्रेष्ठ नारी है।

### 8. त्रिजटा

त्रिजटा लंका निवासिनी है और राक्षसियों का जो समूह सीता को अशोक वाटिका में डराने-धमकाने आया था, उस समूह की एक सदस्या भर है। राक्षसी होते हुए भी यह श्रेष्ठ नारी पात्रों में परिगणित इसीलिए है कि सीता से इसकी सहानुभूति है। इतना ही नहीं, इसकी भक्ति राम के प्रति है तथा यह निपुण है और विवेकशील है। वह सीता की विपत्ति में उनके साथ है-

**त्रिजटा नाम राच्छसी एका।**

**राम चरन रति निपुन बिबेका ।।**

X X X

**त्रिजटा सन बोलीं कर जोरी।**

**मातु बिपति संगिनि तै मोरी।।10**

### नारी धर्म विरोधी पात्र

इस वर्ग के अंतर्गत कैकेई, मंथरा, अहल्या और शूर्पणखा को रखा गया है। इनका संक्षिप्त परिचय 'मानस' के अनुसार :

## 1. कैकेई

कैकेई 'मानस' से यदि बहिष्कृत हो जाय तब मानस में शेष कुछ न रह जाय। कैकेई का प्रारंभिक स्वरूप स्त्रियोचित है। रामजन्म, राम विवाह तथा राम के तिलकोत्सव का समाचार सुनने तक वह श्रेष्ठ नारी पात्र की श्रेणी में परिगणित रहती है परंतु मंथरा के भड़काने के पश्चात् ही उसके ये गुण तिरोहित हो जाते हैं। इतना ही नहीं, राम वन गमन के पश्चात् कैकेई का विरोधी रूप शांत हो जाता है और अपने कृत्य पर उन्हें हार्दिक पश्चाताप होता है। कैकेई के कारण श्रीराम को वनवास होता है और दशरथ मरण होता है। यही कलंक कैकेई को उसके सद्गुणों से दूर कर देता है। इतनी सी भूल पर संसार भर का जो भी और जितना भी अपमान था, कैकेई को झेलना पड़ा।

## 2. मंचरा

कैकेई की कुबड़ी दासी, जो मायके से कैकेई के साथ आयी थी। कैकेई में बुद्धि विभ्रम का कार्य यही नारी पात्र करता है। मंथरा का जो सबसे बड़ा गुण है, वह है स्वामी भक्ति। इसी स्वामी भक्ति के कारण वह कैकेई के भरत को राजसिंहासन दिलाना चाहती है। इस कार्य में यद्यपि उसका कोई स्वार्थ नहीं है। उससे अपनी स्वामिनी का बुरा नहीं देखा जाता-

**कोउ नृप होउ हमहि का हानी।**

**चेरि छाड़ि अब होब कि रानी ।।**

**जारै जोगु सुभाउ हमारा।**

**अनभल देखि न जाइ तुम्हारा।।"**

तुलसी ने कैकेई की दासी मंथरा का चरित्र-चित्रण ठीक यथार्थ घरातल पर करने का प्रयास किया है और बताना चाहा है कि परिचारिकाओं का बुद्धि विवेक यही होता है मंथरा की भाँति ।

## 3. अहल्या

अहल्या भी मानस की गौड नारी पात्र है। इसका कार्य मात्र उद्धरित होकर नारी की दीन-हीनता का बखान करते हुए श्रीराम की स्तुति करना है। जिस कारण से अहल्या को शिला होना पड़ा उसमें उसका रंचमात्र भी दोष नहीं था। उसके पति का रूप रखकर कामी इन्द्र यदि उसका छल से सतीत्व नष्ट कर गया तो इसमें उसकी सहमति तो नहीं थी। फिर भी पुरुष प्रधान समाज में वह दोषी ठहरा दी गयी। यहाँ भी नारी स्वयं को अपवित्र मानती है।

**मैं नारि अपावन प्रभु जग पावन रावन रिपु जन सुखदाई।।12**

यह प्रसंग यदि मानस में न रखा गया होता तो किसी भी प्रकार का कोई अन्तर कथा-सौन्दर्य में न आता। पर, जब रखा ही था, तो तुलसी बाबा इस प्रसंग के माध्यम से नारी के साथ न्याय कर सकते थे, जो उन्होंने नहीं किया।

**4. ताड़का**

इस नारी पात्र के संबंध में भी तुलसी ने विशेष कुछ नहीं लिखा है। मात्र इतना ही कि राम-लक्ष्मण को लेकर मुनि विश्वामित्र जा रहे हैं, सामने आती हुई क्रोधित ताड़का को मुनिवर ने राम को दिखाया और राम ने एक बाण में उसके प्राण हरण कर उसे अपने धाम भेज दिया।

**5. शूर्पणखा**

शूर्पणखा का 'मानस' के रंगमंच पर अवतरण ही भयानक रूप में हुआ है। वह लंकेश की बहिन है और नागिन के समान दुष्ट हृदय है-

**सूपनखा रावन कै बहिनी।**

**दुष्ट हृदय दारुन जसि अहिनी ।।**

**पंचबटी सो गइ एक बारा।**

**देखि बिकल भई जुगल कुमारा।।13**

शूर्पणखा का यह कृत्य भारतीय सामाजिक मर्यादा और नारी धर्म के विरुद्ध है, इसीलिए तुलसी की दृष्टि में यह क्षमा योग्य नहीं है। यही कारण है कि नाक-कान काटकर लक्ष्मण के द्वारा इसे दंडित कराया गया। शूर्पणखा भोगवाद की प्रतीक है। उसने नारी की लज्जा और शील का अतिक्रमण किया था, उसने समाज द्वारा बनायी गयी मर्यादा को तोड़ा था, अतः वह दण्ड की पात्र थी। तुलसी की दृष्टि में यह निंदित नारी पात्र है।

इस प्रकार मानस में आठ सत्पात्र और पाँच असत् या निंदित नारी पात्रों की संख्या है। यहाँ एक और विचित्र बात है। नारी पात्रों के विपरीत पुरुष पात्रों का चरित्रांकन है। भरत सत्पात्र हैं तो उनकी माता कैकेई असत्पात्र हैं। मंदोदरी सत्पात्र की श्रेणी में परिगणित है तो रावण प्रतिनायक है।

**(ख) तुलसी की दृष्टि में नारी-धर्म**

तुलसी की नारी विषयक विचारधारा परंपरावादी रही है। उनकी दृष्टि

में नारी का स्थान पुरुष के समकक्ष नहीं है। तुलसी की दृष्टि में नारी पुरुष के चरणों की दासी है। पति ही उसका सर्वस्व है। 'मानस' के प्रायः प्रत्येक प्रसंग में उन्होंने अपनी इस विचारधारा का समर्थन तो किया ही है, परंतु अनुसूया द्वारा सीता को दिये गये नारी धर्म संबंधी उपदेशों में तुलसी की नारी संबंधी विचारधारा ही प्रतिभासित होती है। अनुसूया सीता को नारी धर्म की शिक्षा देती हुई कहती है-

**मातु पिता भ्राता हितकारी।**
**मितप्रद सब सुनु राजकुमारी ।।**
**अमित दानि भर्ता बयदेही।**
**अधम सो नारि जो सेव न तेही ।।**
**धीरज धर्म मित्र अरु नारी।**
**आपद काल परखिअहिं चारी ।।**
**वृद्ध रोगबस जड़ धनहीना ।**
**अंध बधिर क्रोधी अति दीना ।।**
**ऐसेहु पति कर किएँ अपमाना।**
**नारि पाव जमपुर दुख नाना ।।**
**एकइ धर्म ब्रत एक नेमा।**
**कायँ बचन मन पति पद प्रेमा ।।**
**जग पतिब्रता चारि बिधि अहहीं।**
**बेद पुरान संत सब कहहीं।।**
**उत्तम के अस बस मन माहीं।**
**सपनेहुँ आन पुरुष जग परपति देखइ नाहीं।।**
**मध्यम भ्राता पिता पुत्र निज जैसें ।।**
**धर्म बिचारि समुझि कुल रहई।**
**सो निकिष्ट त्रिय श्रुति अस कहई ।।**
**बिनु अवसर भय तें रह जोई।**
**जानेहु अधम नारि जग सोई ।।**
**पति बंचक परपति रति करई।**
**रौरव नरक कल्प सत परई ।।**
**छन सुख लागि जनम सत कोटी।**
**दुख न समुझ तेहि सम को खोटी ।।**

**बिनु श्रम नारि परम गति लहई।**

**पतिव्रत धर्म छाड़ि छल गहई ।।**

**पति प्रतिकूल जनम जहँ जाई।**

**बिधवा होइ पाइ तरुनाई।। 14**

पति कैसा भी हो, स्त्री के लिए वह पूज्य है, देवता है, वंदनीय है। पतिवंचक होना उसका घोरतम पाप है। सब प्रकार से हीन पति का अपमान करने वाली नारी नरक गामिनी होती है।

इस नारी धर्म के अतिरिक्त भी तुलसी ने प्रसंगानुसार जो भी कहा है अथवा पात्रों से कहलवाया है, उससे भारतीय नारी की विवशता, बंधन और प्रतिबंध ही परिलक्षित होते हैं। उस युग में योषिता अर्थात् नारी धर्म के समस्त अधिकारों से वंचित थी। शिव-पार्वती संवाद के अंतर्गत पार्वती का शिव के प्रति कथन है कि यद्यपि योषिता होने के कारण धर्म के सिद्धांत और रामकथा को श्रवण करने का अधिकार मुझे नहीं है। परंतु मनसा, वाचा, कर्मणा मैं आपकी दासी हूँ। आपके चरणों में मेरी रति होने के कारण मैं इस कथा को सुनने की पात्र हो सकती हूँ-

**जदपि जोषिता नहिं अधिकारी।**

**दासी मन क्रम बचन तुम्हारी ।।**

**अब मोहि आपनि किंकरि जानी।**

**जदपि सहज जड़ नारि अयानी ।। 15**

यहाँ पार्वती से यह कहलवाया गया है कि नारी तो प्राकृतिक रूप से मूर्ख होती है-'सहज जड़' तात्पर्य यह कि शिक्षा, ज्ञान, पठन-पाठन और सम्मान से वंचित नारी जड़ और मूर्ख समझी जाती थी। नारी ने इतना अनादर और उपेक्षा प्राप्त की कि वह स्वयं ही अपनी शक्ति भूल गयी। वह स्वयं को सर्वथा हीन समझने लगी। अहल्या प्रसंग में भी श्रीराम की प्रार्थना करते हुए अहल्या स्वयं को 'अपावन' संबोधित करती है-मैं नारि अपावन, प्रभु जगपावन, रावन रिपु जन सुखदाई। शबरी तो जाति से ही उस काल में तथाकथित शूद्र कही जाने वाली जाति से थी। इन जातियों के पुरुषों को शिक्षादि से वंचित रखा जाता था, तब स्त्रियों की शिक्षादि की तो कोई कल्पना भी नहीं कर सकता था। ऐसी शबरी भी यदि नारी को अधम से अधम और इन अधमाधमों में नारी को अधम मानती है, तो आश्चर्य क्या ?-

**अधम ते अधम अधम अति नारी।**

**तिन्ह महँ मैं मतिमंद अघारी।। 16**

नारी की विवशता को तुलसी ने पार्वती की माता के शब्दों में इस प्रकार व्यक्त किया है-

**कत बिधि सृजीं नारि जग माहीं।**

**पराधीन सपनेहुँ सुखु नाहीं।।"**

'मानस' की इस पराधीन स्त्री पर स्पष्टतः मनु महाराज का वह प्रभाव है, जहाँ कहा गया है कि स्त्री को बाल्यावस्था में पिता के, युवावस्था (विवाहोपरांत) पति के तथा वृद्धावस्था में पुत्र के अधीन रहना चाहिए अन्यथा उनके बिगड़ने का अंदेशा रहता है। तुलसी ने भी यही आशंका व्यक्त की है-

**महावृष्टि चलि फूटि किआरीं।**

**जिमि सुतंत्र भएँ बिगरहिं नारीं। 18**

स्पष्ट रूप से तुलसी, नारी को पूर्ण स्वतंत्रता देने के पक्षधर नहीं थे। अनुसूया के द्वारा न केवल नारी धर्म को व्याख्यायित किया गया, अपितु रावण- मंदोदरी संवाद में रावण के द्वारा नारी की दुर्बलताओं पर भी तुलसी ने प्रकाश डाला है। मंदोदरी द्वारा अपने पति को समझाने और श्रीराम से वैर न करने की समझाइस देने पर रावण कहता है कि-नारी के भीतर ये आठ अवगुण सदैव निवास करते हैं-

**नारि सुभाउ सत्य सब कहहीं।**

**अवगुन आठ सदा उर रहहीं।।**

**साहस अनृत चपलता माया।**

**भय, अबिबेक असौच अदाया।।19**

कैकेई ऐसे ही एक प्रसंग में नारी अपनी ही जाति को दीन-हीन बताती है। मंथरा से कहती है कि काने, खोरे, कुबड़े वैसे भी कुटिल होते हैं, पर यदि ये गुण किसी स्त्री में है तब दुर्बुद्धि का योग अधिक होता है-

**काने खोरे कूबरे, कुटिल कुचाली जानि।**

**तिय बिसेषि पुनि चेरि कहि भरतुमातु गुसुकानि ।20**

'त्रिया चरित्रं पुरुषस्य भाग्यम्' का अर्थ ग्रहण किये हुए अनेक युक्तियाँ 'रामचरितमानस' में भरी पड़ी हैं, जिसमें नारी के चरित्र को गूढ़तम सिद्ध करने का प्रयास किया गया है। राम के राजतिलक के ठीक पूर्व कोप भवन में स्थित कैकेई के अप्रत्याशित व्यवहार को देखकर राजा दशरथ के हृदय में यही भावना बलवती होती है। नीति-निपुण राजा भी उसके चरित्र को समझ नहीं पाते-

**ऐसिउ पीर बिहसि तेहिं गोई।**

**चोर नारि जिमि प्रगटि न रोई ।।**

**लखहिं न भूप कपट चतुराई।**

**कोटि कुटिल मनि गुरु पढ़ाई ।।**

**जद्यपि नीति निपुन नरनाहू।**

**नारिचरित जलनिधि अवगाहू।**

नारी का स्वभाव अगम और अगाध है। यदि अबला नारी को सबला बनाने का प्रयास किया गया तो वह अग्नि के समान भीषण, समुद्र के समान अगाध और साक्षात् मृत्यु के समान दुर्निवार हो जाती है-

**सत्य कहहिं कबि नारि सुभाऊ।**

**सब बिधि अगहु अगाध दुराऊ ।।**

**निज प्रतिबिंब बरुक गहि जाई।**

**जानि न जाइ नारि गति भाई। 2**

**काह न पावक जारि सक, का न समुद्र समाइ।**

**का न करै अबला प्रबल केहि जग कालु न खाइ। १३**

**(ग) तुलसी और नारी-निंदा**

पूर्वोक्त विवेचन यह सिद्ध करता है कि तुलसी नारी विरोधी थे अथवा उन्होंने नारी की घोर निंदा की है। वैदिक युग की विदुषी नारी को काल-प्रभाव के कारण मात्र भोग्या और कामिनी के रूप में देखा जाने लगा। तुलसी के युग तक आते-आते यह भावना प्रबल और पुष्ट होकर सामाजिक रूढ़ि में परिवर्तित हो गयी। तुलसीदासजी का जीवन कठोर संयम और वैराग्य का रहा है। नारी की प्रताड़ना अथवा पत्नी की भर्त्सना के कारण ही उनका मन संसार की आसक्ति से विरत हुआ था और उन्होंने संत मत में दीक्षित होने का प्रण ले लिया था। परंतु वे नारी द्वारा की गयी अपनी भर्त्सना भूले नहीं थे। वे इस बात को भी नहीं भूले थे कि यदि नारी का साथ बना रहता तो वे भक्ति मार्ग पर चल नहीं सकते थे। उनके सामने भारतीय परंपरा थी, लोक रीतियों में नारी की स्थिति थी, संतों की वाणी थी और तमाम शास्त्रीय ग्रंथ थे, जो एक मत से भक्ति मार्ग में नारी को बाधक मानने की घोषणा कर रहे थे। इन सबसे बड़ा प्रमाण था उनका स्वयं का नारी विषयक अनुभव। यही कारण है कि उनके द्वारा सृजित महाकाव्य में जहाँ भी उन्हें अवसर प्राप्त हुआ है, नारी के विरोध का स्वर मुखर हुआ है। फिर यह स्वर चाहे प्रसंगानुकूल किसी पात्र ने उद्घोषित किया हो, पात्रों का स्वागत कथन हो अथवा शास्त्रों के संदर्भों से मण्डित कवि

द्वारा कथन किया गया हो।

भक्तों की भक्ति पथ का यदि सबसे बड़ा रिपु कोई है, तो वह है-कंचन और कामिनी। परंतु शास्त्रों ने कामिनी को कंचन से भी शक्तिशाली माना है। नारी को माया का ही सुंदर रूप माना गया है। समूचा विश्व ही इसके रूप सौंदर्य और नयन-बाणों से बिद्ध होकर अचेत हो जाता है। परंतु श्रीराम की जिन पर कृपा होती है वही इससे बच सकते हैं-

**नारि नयन सर जाहि न लागा।**

**घोर क्रोध तम निसि जो जागा ।।**

**लोभ पाँस जेहिं गर न बंधाया।**

**सो नर तुम्ह समान रघुराया। 24**

कामिनी से समूचा अग-जग इसलिए बिद्ध हो जाता है कि उसके मूल में काम होता है। परंतु यह काम अपने अन्य सहयोगियों-क्रोध, मद, मोह, लोभादि के साथ मिलकर जितना कष्ट देता है उससे अधिक कष्ट मायारूपी नारी से होता है-

**काम क्रोध लोभादि मद प्रबल मोह कै धारि।**

**तिन्ह महँ अति दारुन दुखद मायारूपी नारि। 25**

यह माया रूपी नारी मनुष्य के जप-तप-संयम नियम आदि सबको नष्ट कर देती है-

**जप तप नेम जलाश्रय झारी।**

**होइ ग्रीषम सोषइ सब नारी। 26**

मनुष्य मुक्ति पाने का प्रयास करता है और सत्पुरुषों के बताये मार्ग पर चलने का प्रयास भी करता है। परंतु इस मार्ग के जो बाधक तत्व हैं, नारी उनकी वृद्धि में सहायक होती है-

**पाप उलूक निकर सुखकारी।**

**नारि निबिड़ रजनी अँधियारी।।**

**बुधि बल सील सत्य सब मीना।**

**बनसी सम त्रिय कहहिं प्रबीना।**

नारी समस्त दोषों की व समस्त दुर्गुणों की खान है। नारी समस्त दुखों और कष्टों का मूल है। ऐसी प्रमदा अर्थात् नारी से दूर रहने में ही भलाई है-

**अवगुन मूल सूलप्रद प्रमदो सब दुख खानि ।**

**ताते कीन्ह निवारन मुनि मैं यह जियँ जानि। 28**

तुलसी ने 'छहों शास्त्र सब ग्रंथन' में विज्ञता प्राप्त की थी। परंतु वे अपने

युगीन प्रभाव से विलग न थे। नारी के संबंध में जो कटुता या निंदनीय भाव 'मानस' में प्राप्त होते हैं, उसका अधिकांश उन्होंने इन्हीं 'छहों शास्त्र सब ग्रंथन' के मंथन से प्राप्त किया है-

**सुनु मुनि कह पुरान श्रुति संता।**

**मोह बिपिन कहुँ नारि बसंता।**

माया का रूप कामिनी से किसी भी प्रकार न्यून नहीं है। विश्व में माया की इसी मोहिनी शक्ति का प्राधान्य है। कामिनी का रूप उस दीप शिखा की भाँति है, जिसमें मन रूपी पतंगे जल जाते हैं। पर जो काम का त्याग कर सत्संग करते हैं और राम को भजते हैं वे इस दीपशिखा रूपी रूप ज्योति में जलने से बच जाते हैं:

**दीप सिखा सम जुबति तन मन जनि होसि पतंग।**

**भजहि राम तजि काम मद करहि सदा सतसंग।**

'मानस' में तुलसी का जो नारी चिंतन है, उसके केन्द्र में नारी को काम- पुत्तलिका के रूप में देखना है। चिंतकों ने नारी में वासना का प्राधान्य माना है। नारी में संयम का अभाव माना गया है। वह सुंदर पुरुष को देखकर अपने मन को रोक नहीं पाती-

**आता पिता पुत्र उरगारी। पुरुष मनोहर निरखत नारी।।**

**होइ बिकल सक मनहि न रोकी।**

**जिमि रबिमनि द्रव रबिहि बिलोकी। 1**

मध्यकालीन संतों ने नारी को अवगुणों की खान बताया है और उसे साधना में बाधक माना है। तुलसीजी भी इसके अपवाद नहीं हैं। इन पर भी कबीरादि संतों का प्रभाव पड़ा है। नारी में जो-जो अवगुण इन संत कवियों को दिखायी दिये, तुलसी जी ने भी उन्हीं को अपने दृष्टि पथ में रखा।

उपर्युक्त प्रकार की निंदाओं को विद्वानों ने अधिक गंभीरता से नहीं लिया है। पर तुलसी द्वारा मानस में लिखित 'ढोल गँवार शूद्र पशु नारी चौपाई ने उन्हें सर्वाधिक विवादित बनाया है। एक इसी चौपाई ने तुलसी जी को एक साथ नारी और शूद्र विरोधी बना दिया। इस चौपाई के पक्ष और विपक्ष में अनेक वक्तव्य विद्वानों द्वारा दिये गये, आलेख लिखे गये, परंतु विरोधी पक्ष अब भी कुछ भी सुनने के मूड में नहीं है। इस पक्ष पर आगे विस्तार से विचार किया गया है।

परंतु उपर्युक्त विश्लेषण के आधार पर यह निष्कर्ष प्राप्त किया जा

सकता है कि तुलसी ने मानस में नारी-निंदा का जो उपक्रम किया है, उसके दो कारण है। प्रथम, युगीन प्रभाव, जिसमें भक्ति, वैराग्य और जप-तप केन्द्र में हैं। इस वैराग्य में नारी को बाधक माना गया है। दूसरे, उस नारी की निंदा तुलसी ने की है, जो परंपरा और भारतीय संस्कृति की मर्यादा के विरुद्ध कार्य करती हैं। इनके अतिरिक्त अन्य कोई कारण ऐसा परिलक्षित नहीं होता, जिस कारण से तुलसी ने नारी की अकारण निंदा की हो। प्रख्यात विद्वान श्री बलदेव प्रसाद मिश्र का मत है कि- "विषयों में सबसे प्रबल है-कामोपभोग और पुरुषों के लिए इसका प्रधान साधन है प्रमदा अथवा नारी। इसलिए विषय वासना की निंदा को अपना प्रधान लक्ष्य बनाने वाले गोस्वामीजी ने नारी निंदा में कोई कसर नहीं रख छोड़ी है। 32 डॉ. माताप्रसाद गुप्त के भी कुछ ऐसे ही विचार हैं। वे लिखते हैं "प्रत्येक युग के कलाकार नारी चित्रण में प्रायः उदार पाये जाते हैं, किंतु नारी चित्रण में तुलसीदास बेहद अनुदार हैं। यद्यपि उनकी इस अनुदारता का कारण अब तक रहस्य के गर्भ में छिपा हुआ है। पर नारी विषयक उनकी अनुदारता एक ऐसा तथ्य है, जिसको अस्वीकृत नहीं किया जा सकता।

तुलसी को नारी निंदक बनने का क्रम यहीं नहीं थमता। मिश्र बंधुओं ने भी उन पर नारी निंदक होने के आरोप लगाये हैं। वे लिखते हैं-तुलसी ने कौशल्या आदि के चरित्रों को इसीलिए सुंदर और पवित्र बताया है कि वे राम से संबंधित हैं। शेष नारियों को सहज जड़, अपावन तथा स्वतंत्र होने के अयोग्य माना है। कतिपय साहित्यकार यह भी मानते हैं कि तुलसी ने मानस मैं जो नारी निंदा की है, उसका कारण उनका नारी से पर्याप्त संपर्क का अभाव है। **मातु पिता जग जाई तज्यौ** से यह तो सिद्ध है कि वे मातृत्व सुख से वंचित रहे। विवाह हुआ तो चंद बसंत भी देखने न पाये और भर्त्सना के कारण पत्नी से विलगाव हो गया। वेद पुराणादि में भक्त और संत के लिए नारी निषेध के स्पष्ट निर्देश उन्हें प्राप्त हुए। ऐसी स्थिति में तुलसी का नारी निंदा करना एक सहज ध्येय बन गया।

### (घ) तुलसी का नारी-निंदा विरोधी पक्ष

अब तक मात्र एक पक्ष को सोदाहरण और सप्रमाण विश्लेषित किया गया कि नारी विरोधी दृष्टि थी तुलसी की-मानस में। परंतु दूसरा पक्ष भी प्रस्तुत किया जाना आवश्यक है। उपर्युक्त प्रमाणों को दृष्टिगत रखते हुए तो यही लगता है कि तुलसी नारी विरोधी थे। पर क्या सचमुच वे नारी विरोधी थे? हिन्दी साहित्य के मूर्धन्य विद्वान आचार्य रामचन्द्र शुक्ल का मत है कि-

"युग व्यापक विराग और तप की भावना के कारण तुलसी ने नारी के उस रूप और निवृत्ति में बाधक है।" हिन्दी का अौर विद्वान डॉ. रामकुमार वर्मा तुलसीदास जी के पक्ष में लिखते हैं कि एकलसीदास ने नारी जाति के लिए बहुत आदर भाव प्रकट किया है। पार्वती, अनुसूया, कौशल्या, सीता, ग्रामवधू आदि की चरित्र रेखा पवित्र और धर्मपूर्ण विचारों से निर्मित हुई हैं। कुछ आलोचकों का कथन है कि तुलसीदास ने नारी जाति की निंदा की, और उन्हें ढोर-गँवार की कोटि में रखा। परंतु यदि मानस पर निष्पक्ष दृष्टि डाली जाय तो विदित होगा कि नारी के प्रति भर्त्सना के ऐसे प्रमाण उसी समय उपस्थित किये गये, जबकि नारी ने धर्म विरोधी आचरण किये। 35

आचार्य शुक्ल और डॉ. वर्मा के उपर्युक्त कथन तात्विक दृष्टि से अत्यंत सटीक हैं और सत्य के अति निकट हैं। यह ठीक है कि तुलसी के जीवन को नारी के अभाव ने प्रभावित किया। पर वे इस अभाव को प्रतिशोध की उस सीमा तक नहीं ले जा सकते थे कि नारी की उन्हें निंदा करनी पड़े। नारी के प्रति पारंपरिक सोच, जप-तप में नारी को माया मानकर उसके द्वारा विघ्न पड़ना तथा मर्यादा को तोड़ने का उपक्रम करना यही उनके द्वारा नारी निंदा के कारण बने हैं।

तुलसी ने असत पात्र नारियों की ही निंदा की है, चाहे वह कैकेई हो, ताड़का हो अथवा शूर्पणखा। गोस्वामीजी के आराध्य राम की विमाता और राजमहलों में रहने वाली कैकेई तुलसी की दृष्टि में असत पात्र है, भले ही वह उच्च कुल की है। कैकेई ने परिवार को विखंडित करने का कार्य किया, अतः गोस्वामीजी की दृष्टि में वह निंदनीय है। इसके विपरीत श्रीराम के रिपु रावण की पत्नी तथा राक्षस कुल की मंदोदरी तुलसी की दृष्टि में सुपात्र है, क्योंकि वह निडर होकर नीति की बात करती है। वह रावण द्वारा पराई स्त्री को चुराकर लाने के कृत्य के लिए अपने पति की भर्त्सना करती है। कैकेई का कृत्य कवि की दृष्टि में घोर अपराध है, वह अक्षम्य है। यही कारण है कि अन्य पात्रों के द्वारा भी तथा स्वयं भी कवि ने कैकेई के प्रति अनेक कटूक्तियाँ की हैं:

**निघरक बैठि कहइ कटु बानी।**

**सुनत कठिनता अति अकुलानी ।।**

**जीभ कमान बचन सर नाना।**

**मनहुँ महिप मृदु लच्छ समाना।**

और भी कठोर वचन-

**अस कहि कुटिल भई उठि ठाढ़ी।**

**मानहुँ रोष तरंगिनि बाढ़ी।।**

**पाप पहार प्रगट भइ सोई।**

**भरी क्रोध जल जाइ न जोई।**

'मानस' में ऐसे स्थलों की कमी नहीं है, जहाँ नारी के गुणों का सोत्साह वर्णन तुलसी ने न किया हो। राम की जननी कौशल्या के पावन चरित्र को तुलसी ने नमन किया है। कौशल्या के लिए वे अपने उद्‌गार व्यक्त करते हैं:

**बंदहुँ कौसल्या दिसि प्राची।**

**कीरति जासु सकल जग माँची।**

**प्रगटेउ जहँ रघुपति ससि चारु।**

**बिस्व सुखद खल कमल तुसारू ।**

कैकेई भी दो वचन माँगने के पूर्व कौशल्या की ही-सत्पात्र की श्रेणी में थी। तुलसीजी कहते हैं कि सभी नारियाँ पुनीत आचरण करती थीं और पति के अनुकूल चलती थीं-

**कौसल्यादि नारि प्रिय सब आचरन पुनीत ।**

**पति अनुकूल प्रेम दृढ़ हरि पद कमल बिनीता।**

कौशल्या का चरित्र अत्यंत उदात्त है। वे धैर्य व करुणा की प्रतिमूर्ति हैं तथा परम विवेकी हैं। राम को वनवास देते हुए राजा दशरथ मरण की सीमा तक अवसाद में आ गये। सुत का वियोग उन्हें भी कम नहीं था। परंतु फिर भी अपना असीम दुख हृदय में छिपाकर पति दशरथ को प्रबोध देती हैं कि आप अवध के जहाज हो। आप धैर्य धारण करें तो अवध पार लग जाएगा। आपके डूबते ही सब डूब जाएगा-

**उर धरि धीर राम महतारी।**

**बोली बचन समय अनुसारी।।**

**नाथ समुझि मन करिअ बिचारू ।**

**राम बियोग पयोधि अपारू ।।**

**करनधार तुम्ह अवध जहाजू ।**

**चदेउ सकल प्रिय पथिक समाजू ।।**

**धीरजु धरिअ त पाइअ पारू।**

**नाहिं त बूड़िहिं सब परिवारू।०**

कौशल्या के हृदय में किसी प्रकार का किसी के प्रति कोई क्षोभ नहीं

है। वह करुणा की प्रतिमा है। कैकेई पुत्र भरत को वे राम सदृश निज सुत ही समझती हैं। कौशल्या की इस भावना को तुलसी ने शब्द प्रदान किये हैं:

**सरल सुभाय मायें हियें लाए।**

**अति हित मनुहुँ राम फिरि आए।।**

**भेंटेउ बहुरि लखन लघु भाई।**

**सोकु सनेहु न हृदयें समाई ।।**

**देखि सुभाउ कहत सब कोई।**

**राम मातु अस काहे न होई।**

कौशल्या की भाँति सुमित्रा भी अपने पुत्र लक्ष्मण को राम की सेवा में वन भेजकर सुशीला नारी का आदर्श प्रस्तुत करती हैं। और सीता तो साक्षात् भारतीय नारी का उत्कृष्ट उदाहरण है ही। तुलसी, जनक पुत्री सीता की वंदना करते हुए लिखते हैं:

**जनकसुता जग जनिन जानकी।**

**अतिसय प्रिय करुनानिधान की।।12**

अनुसूया तो सीता को यह आशीर्वाद प्रदान करती हैं कि नारियाँ तुम्हें अपना आदर्श मानेंगी, तुम्हारे नाम पर अपने पतिव्रत धर्म का निर्वाह करेगी-

**सुनु सीता तव नाम सुमिरि नारि पतिव्रत करहिं।**

**तोहि प्रानप्रिय राम कहिउँ कथा संसार हित।।3**

इसी पतिव्रता धर्म के कारण सीता, राम के साथ वनवास जाने हेतु तत्पर हो जाती हैं। यद्यपि उन्हें वन न जाने के लिए कौशल्या, दशरथ तथा स्वयं श्रीराम बहुत समझाते हैं। परंतु, सीता पर किसी की सीख का कोई प्रभाव नहीं पड़ता। सीता को पति के बिना सुरपुर भी नरक के समान प्रतीत होता है। पति के नाते से ही समस्त संबंधों का महत्व है। पुरुष के बिना नारी वैसे ही है जैसे प्राण के बिना देह और नीर के बिना नदी प्रभाव शून्य होती है-

प्राननाथ करुनायतन सुंदर सुखद सुजान।

तुम्ह बिनु रघुकुल कुमुद बिधु सुरपुर नरक समान ।।

**मातु पिता भगिनी प्रिय भाई।**

**प्रिय परिवारू सुहृद समुदाई ।।**

**सासु ससुर गुर सजन सहाई।**

**सुत सुंदर सुसील सुखदाई ।।**

**जहँ लगि नाथ नेह अरु नाते।**

**पिय बिनु तियहिं तरनिहु ते ताते ।।**

**तनु धनु धामु धरनि पुर राजू।**

**पति बिहीन सबु सोक समाजू ।।**

**भोग रोगसम भूषन भारू।**

**जम जातना सरिस संसारू।।**

**प्राननाथ तुम्ह बिनु जग माहीं।**

**मो कहुँ सुखद कतहुँ कछु नाहीं।।**

**जिय बिनु देह नदी बिनु बारी।**

**तैसिअ नाथ पुरुष बिनु नारी ।।**

**नाथ सकल सुख साथ तुम्हारें।**

**सरद बिमल बिधु बदनु निहारें।**

इतना ही नहीं, सीता ने वस्तुतः भारतीय नारी के आदर्श मूल्यों को गढ़ा है। भारतीय नारी यदि सुकुमारता का और सौंदर्य का प्रतीक है तो वह वन के भीषण कष्टों को सहन करने की अपूर्व क्षमता भी रखती है, बस पति का हाथ और साथ हो-

मोहि मग चलत न होइहि हारी।

छिनु छिनु चरन सरोज निहारी ।।

सबहि भाँति पिय सेवा करिहौं।

मारग जनित सकल श्रम हरिहौं।।

पाय पखारि बैठि तरू छाहीं।

करिहउँ बाउ मुदित मन माहीं।।

श्रम कन सहित स्याम तनु देखें।

कहँ दुख समउ प्रानपति पेखें।।

सम महि तृन तरूपल्लव डासी।

पाय पलोटिहि सब निसि दासी ।।

बार बार मृदु मूरति जोही।

लागिहि तात बयारि न मोही ।।

को प्रभु सँग मोहि चितवनिहारा।

सिंघवधुहिं जिमि ससक सिआरा।।

मैं सुकुमारि नाथ बन जोगू।

तुम्हहि उचित तप मो कहुँ भोगू।

भारतीय नारी का सौकुमार्य वन के कठोर झंझावतों को भी झेल सकता है। सीता का यह प्रसंग यह सिद्ध करता है।

सीता में देवत्व का आरोपण तो तुलसी ने किया ही है, परंतु मानवीय भावनाओं और क्रियाओं का आरोपण भी किया है। अर्थात् सीता केवल देवी नहीं है, मानवी भी है। यही कारण है कि सामान्य परिवारों की नारियों की भाँति सीता भी अपने परिवार की कुशल कामना करती हैं। वन गमन के केवट प्रसंग में गंगा पूजा के पश्चात् सीता यही वरदान माँग रही हैं-

**सियँ सुरसरिहि कहेउ कर जोरी।**

**मातु मनोरथ पुरउबि मोरी ।।**

**पति देवर सँग कुसल बहोरी।**

**आइ करौं जेहिं पूजा तोरी। 146**

सीता की इसी मानवी प्रवृत्ति का दिग्दर्शन 'मानस' के अरण्यकाण्ड में होता है जब सीता का मन स्वर्ण मृग के लिए मचल उठता है-

**अति बिचित्र कछु बरिन न जाई।**

**कनक देह मनि रचित बनाई ।।**

**सीता परम रूचिर मृग देखा।**

**अंग अंग सुमनोहर बेषा ।।**

**सुनहु देव रघुबीर कृपाला।**

**एहि मृग कर अति सुंदर छाला ।।**

**सत्यंसघ प्रभु बधि करि ऐही।**

**आनहु चर्म कहति बैदेही।**

सीता का यह कृत्य 'नारि सहज जड़ अग्य' के अंतर्गत ही परिगणित है। तात्पर्य यह कि गोस्वामी तुलसीदास जी ने मर्यादा के पालन तथा पतिव्रत धर्म को सर्वाधिक महत्व दिया है। कोई नारी मर्यादा का अतिक्रमण करे, यह उनकी दृष्टि में अक्षम्य है।

सत्पात्रों की श्रेणी में परिगणित होने वाली रावण-पत्नी मंदोदरी, तुलसीजी की दृष्टि में श्रेष्ठ नारी है। यद्यपि मंदोदरी अपने पति की भर्त्सना करती है और ऐसा कर वह पतिव्रत धर्म अथवा नारी धर्म की मर्यादा का उल्लंघन करती है। परंतु चूँकि उसके हृदय में हरि भक्ति है और वह नीति की बात कहती है, अतः उसका पति विरोध तुलसीजी की दृष्टि में पूर्णतः क्षम्य है-

**अब पति मृषा गाल जनि मारहु ।**

**मोर कहा कछु हृदयँ बिचारहु ।।**

**पति रघुपतिहि नृपति जनि मानहु।**

**अग जग नाथ अतुलबल जानहु ।। 48**

X X X

**सूपनखा कै गति तुम्ह देखी।**

**तदपि हृदय नहिं लाज बिसेषी ।। 49**

X X X

**काल दण्ड गहि काहु न मारा।**

**हरइ धर्म बल बुद्धि बिचारा ।।**

**निकट काल जेहि आवत साई।**

**तेहि भ्रम होइ तुम्हारिहि नाई ।। 50**

शबरी भी इसी श्रेणी की एक तथाकथित अन्त्यज पात्र है जो श्रीराम को अत्यंत प्रिय है क्योंकि वह राम की भक्त है। श्रीराम शबरी को नवधा भक्ति के स्वरूप से परिचित कराते हैं और उसे अत्यन्त आदर और सम्मान प्रदान करते हैं। दो बार राम शबरी को आदरसूचक शब्द 'भामिनी' से संबोधित करते है-

**सोई अतिसय प्रिय भामिनी मोरें।**

**सकल प्रकार भगति दृढ़ तोरें ।।**

**जनकसुता कइ सुधि भामिनी।**

**जानहि कहु करिबरगामिनी ।। 51**

शबरी अपनी भक्ति के कारण परम पद प्राप्त करती है। यद्यपि वह जातिहीन है, अघी है और नारी है-

**जाति हीन अघ जन्म महि मुक्त कीन्हि असि नारि।**

**महामंद मन सुख चहसि ऐसे प्रभुहि बिसारि।।**

शबरी भी तुलसी की दृष्टि में श्रेष्ठ नारी है। इसीलिए उसे श्रीराम 'भामिनी' जैसे आदर सूचक शब्द से संबोधित करते हैं-

**कह रघुपति सुनु भामिनी बाता।**

**मानउँ एक भगति कर नाता ।। 5**

मानस प्रवचनकार श्री ब्रह्मस्वरूप खरे का मत है कि- "वर्णाश्रम प्रसंग की भाँति यह कहा जा सकता है कि तत्कालीन विषम सामाजिक परिस्थितियों में भी तुलसी ने नारी के गौरव को सीता, पार्वती, कौशल्या, सुमित्रा, त्रिजटा, मंदोदरी आदि के रूप में प्रतिष्ठापित करने का स्तुत्य प्रयास किया है। आज के वैचारिक व बौद्धिक युग में नारी की स्वतंत्रता व समानता का विचार तेजी से उछला है। तुलसी इस विचार से बहुत आगे थे। उन्होंने तो यहाँ तक नारी पात्रों को सम्मान दिया है कि नारी तो नारी, जिस दिशा में कौशल्या-सी

नारियों ने जन्म लिया है, उस दिशा में भी वे प्रणाम करते हैं।"54

यह सत्य है कि तुलसी ने 'मानस' में यत्र तत्र नारियों के संबंध में कटूक्तियाँ की हैं। परंतु उन कटूक्तियों के पीछे कतिपय प्रसंग हैं और कतिपय संदर्भ हैं। बिना उन संदर्भों को जाने तुलसी पर नारी विरोधी होने का एकतरफा आरोप लगाया जाना उचित नहीं है।

**(ङ) ढोल गँवार शूद्र पशु नारी**

**ढोल गँवार सुद्र पसु नारी।**

**सकल ताड़ना के अधिकारी ।।**

'रामचरितमानस' के सुंदरकाण्ड की इस चौपाई ने समूचे देश में एक समय तहलका मचा दिया था। तमाम समाचार पत्रों में इसके पक्ष और विपक्ष में लेख लिखे गये। तथाकथित दलित संगठनों और नारी-स्वातंत्र्य संगठनों ने 'मानस' की प्रतियों की होली जलाई और इस ग्रंथ को प्रतिबंधित करने की माँग की। इन सब आंदोलनों के पीछे वास्तविकता कम और राजनीति अधिक थी।

उपर्युक्त चौपाई में न तो तुलसी के निजी विचार गुंफित हैं और न ही उन्हें मात्र एक चौपाई के कारण नारी विरोधी सिद्ध किया जा सकता है। श्री ब्रह्मस्वरूप खरे का कथन है कि- "रामचरित मानस मंचीय महाकाव्य है। इसके पात्र चरित्र के रूप में कथोपकथन करते हैं, न कि तुलसी। जिस प्रकार सम्पादक, मात्र सम्पादन कार्य करता है। यह आवश्यक नहीं कि वह लेखकों के लेखों में व्यक्त विचारों से सहमत हो। लेखकों के विचार सम्पादक के विचार मानना जिस तरह अनुचित है ठीक उसी प्रकार 'ढोल गँवार शूद्र पशु नारी में व्यक्त विचारों को तुलसी के मानना अनुचित है।"55 इस संबंध में श्री खरे जी की अत्यंत सुंदर व्याख्या है। वे लिखते हैं- "श्रीराम, पथ प्राप्ति हेतु समुद्र से याचनारत हैं, किंतु उस पर प्रार्थना का कोई असर नहीं हो रहा है-

**बिनय न मानत जलधि जड़ गये तीनि दिन बीति।**

**बोले राम सकोप तब, भय बिनु होई न प्रीति ।। 56**

युद्ध या संकट काल में जहाँ प्रति पल बहुमूल्य होता है, ऐसी स्थिति में तीन दिन तक सागर तट पर ही अटके रहकर व्यर्थ समय गँवाना तो कुशल राजनीति का अंग नहीं है। फिर हनुमानजी पूर्व में ही रघुनाथ से विनय कर चुके हैं कि-

**निमिष निमिष करुनानिधि जाहिं कलप सम बीति।**

**बेगि चलिअ प्रभु आनिअ भुज बल खल दल जीति ।।57**

क्योंकि लंका में रावण द्वारा सीता को दी गयी अवधि बीतती जा रही है-

**मास दिवस महुँ कहा न माना।**

**तौ मैं मारबि काढ़ि कृपाना ।। 58**

ऐसा लगता है, मानो सागर मार्ग न देकर अपराध कर रहा हो और रावण के आतंक व अन्याय का अप्रत्यक्ष तथा मौन समर्थक हो। राम का रावण के विरुद्ध यह अभियान राज्य विस्तार की लिप्सा से नहीं, लोक कल्याण की भावना से प्रेरित था। तीन दिन के उपरांत अधीर होकर राघवेन्द्र ने वही किया जो उचित था : **संधानेउ प्रभु बिसिख कराला।**

**उठी उदधि उर अंतर ज्वाला ।। 59**

**सभय सिंधु गहि पद प्रभु केरे।**

**छमहु नाथ सब अवगुन मेरे // 60**

और भयभीत समुद्र प्रभु से क्षमा माँगते हुए स्वयं को तुच्छ से तुच्छ बताने के फेर में प्रलाप करता हुआ अन्य अनेक प्रकार के कथनों (दोहा क्र. 58 की चौपाई क्र. 1 से 8 तक) के साथ यह कथन भी कर उठता है: **ढोल गँवार सूद्र पसु नारी।**

**सकल ताड़ना के अधिकारी।। 61**

यह प्रलाप घबराये हुए भयातुर सागर का है और प्रलाप कौन करता है? मतवाला, मीत व पागल, इसीलिए इनका प्रलाप ध्यान देने योग्य नहीं होता:

**बातुल भूत बिबस मतवारे।**

**ते नहिं बोलहिं बचन बिचारे।।**

**जिन्ह कर महामोद मद पाना।**

**तिन्हकर कहा करिअ नहिं काना।/ 62**

धनुष भंगोपरांत परशुराम अत्यधिक क्रोध करते हैं, उनके बोधत्व को क्रोधत्व ने हरण कर लिया है। राम के प्रति उनकी शब्दावली द्रष्टव्य है-

**बंधु कहइ कटु संमत तोरें।**

**तू छल बिनय करसि कर जोरें।। 63**

**छलु तजि करहि समरू सिवद्रोही।**

**बंधु सहित न त मारउँ तोही ।। 64**

**संभु सरासनु तोरि सठ करसि हमार प्रबोध / 65**

गोस्वामीजी अपनी टीप देते हैं इस विषय में-

**भृगुपति बकहिं कुठार उठाएँ।**

**मन मुसकाहिं राम सिर नाएँ।। 66**

उक्त पंक्तियों में यह द्रष्टव्य है कि क्या तुलसी अपने आराध्य के प्रति 'छल', 'शठ' जैसे शब्दों का प्रयोग कर सकते थे? वे ऐसे प्रलापी के शब्दों के लिए 'बकहिं' शब्द का प्रयोग करते हैं, बकहिं अर्थात् बकना-प्रलाप करना, जिस पर विज्ञजन ध्यान नहीं देते।

इसमें तुलसी की सम्मति जोड़ना उचित नहीं है। 57

'ढोल गँवार शूद्र पशु नारी के विषय में विद्वानों के अपने-अपने तर्क हैं।

इस विषय में डॉ. लखनलाल खरे ने इस प्रसंग का भाषायी विश्लेषण करने का प्रयास किया है। वे लिखते हैं-साहित्यिक भाषा आम भाषा से सर्वथा भिन्न हुआ करती है जिसमें शब्द शक्ति, ध्वनि, वक्रोक्ति, अलंकरादि उपादानों का समावेश होता है और इन्हीं के आधार पर कथ्य का वास्तविक अर्थ ग्रहण किया जाता है। इससे अनभिज्ञ लोग निश्चित ही अर्थ का अनर्थ ग्रहण करते हैं। अतः किसी भी साहित्यिक कृति के अध्ययन के पूर्व साहित्य के अंगों का सम्यक ज्ञान अत्यावश्यक है।

तुलसी के युग की भाषा आज की तरह न परिमार्जित थी, न ही उसका मानक रूप स्थिर हुआ था। विराम चिह्नों का अभाव था। जो भी लिखा जाता था, सीधा सपाट एक ही पंक्ति में लिखा जाता था, शब्दों को पृथक करके नहीं। विराम चिह्नों के नाम पर एक खड़ी पाई (पूर्ण विराम- ।) और दो खड़ी पाइयों (सम्पूर्ण विराम ।।) का प्रचलन था। यह स्थिति आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी (संवत् 1950 के लगभग) के समय तक चलती रही। अपरिष्कृत भाषा के कारण तुलसी साहित्य ही नहीं, अन्य अनेक महान ग्रंथों के शब्दों को उनके प्रसंग व भावानुकूल समझने में बाधा पड़ी। अर्थ का अनर्थ ग्रहण किया गया। कवि का जो भाव ही नहीं था, वह उससे सम्पृक्त किया गया। भाषा परिमार्जनोपरांत ऐसे सारे स्थलों से भ्रम का कोहासा छटा और सुंदर मूल भाव प्रकट हुए।

तुलसीदास जी की उक्त विवादास्पद चौपाई को भी परिमार्जित रूप में ग्रहण करना श्रेयस्कर होगा:

**ढोल, गवाँर सूद्र, पसु नारी।**

**सकल ताड़ना के अधिकारी ।। 68**

चौपाई को परिमार्जित भाषा में लिपिबद्ध करने पर सारा अर्थ स्वयं ही

शीशे की भाँति स्पष्ट हो जाता है, वस्तुतः गँवार-शूद्र (शूद्र से तात्पर्य सेवा करने वाला-सेवक है) यह सेवक घरेलू नौकर अर्थात् गृह सेवक भी हो सकता है, जन सेवक भी।

आज के समय में सभी इसी वर्णान्तर्गत आते हैं, क्योंकि कोई गृह सेवक है, कोई शासकीय सेवक तो कोई जनसेवक पशुवत् अविवेक व स्वच्छन्द आचरण करने वाली नारी-ये ताड़ना के अधिकारी थे, हैं और रहेंगे। शूर्पणखा- पशु-नारी थी, वह ताड़ना की पात्र थी और ताड़ना उसे मिली भी। उसका चरित्र कैसा था-

**सूपनखा रावन कै बहिनी।**

**दुष्ट हृदय दारुन जस अहिनी ।। 69**

दुष्ट हृदय होता, तब भी गनीमत थी, पर वह तो नारी की लज्जा के नाम पर कलंक थी-

**रुचिर रूप धरि प्रभु पहिं जाई।**

**बोली बचन बहुत मुसुकाई ।। 70**

इतना ही नहीं, प्रणय निवेदन राम-लक्ष्मण दोनों से एक साथ। ऐसी नारी ताड़ना की पात्र नहीं है क्या?

वस्तुतः शूर्पणखा आज के समाज की उस कुरीति की प्रतीक है, जिसे स्वतंत्र यौन संबंध कहा गया है और प्रगतिशीलता के नाम पर जो नारियाँ इस संस्कृति की समर्थक हैं, उन्हें एक या एक साथ अनेक पुरुषों के साथ प्रणय निवेदन करने पर कोई फर्क नहीं पड़ता-

**पंचवटी सो गई एक बारा।**

**देखि बिकल भइ जुगल कुमारा।।**

शूर्पणखा एक बार में राम या लक्ष्मण को नहीं, 'जुगल कुमारा - दोनों को चाहने लगती है। ऐसी नारियाँ क्या ताड़ना की पात्र नहीं हैं ? तुलसी संत थे, कोमल स्वभाव से युक्त थे। वे पीड़ा पहुँचाने में, निंदा करने जैसे निम्न कर्मों में विश्वास नहीं करते थे-

**पर पीड़ा सम नहिं अधमाई।**

**पर निंदा सम अध न गरीसा।।**

पशुवत् आचरण करने वाली नारी व गँवार शूद्र के प्रति भी वे इतने कोमल हैं कि मात्र 'ताड़न' करने के पक्ष में हैं, प्रताड़न के पक्ष में नहीं। डॉ. खरे ने इस प्रकरण में और भी अन्य अनेक उदाहरण तथा तर्क देते हुए यह सिद्ध करने का प्रयास किया है कि तुलसी कदापि नारी विरोधी नहीं

थे। नारी विरोधी होने का उन पर लगाया गया आक्षेप सर्वथा तथ्यहीन एवं पूर्वाग्रह से प्रेरित है। 72

प्रख्यात विद्वान डॉ. शिवकुमार शर्मा इस प्रसंग के संबंध में लिखते हैं कि "समुद्र द्वारा कहलवायी गयी तुलसीदासजी की चिरनिन्दित अर्धाली-ढोल गँवार शूद्र पशु नारी का आधार 'गर्ग संहिता का एक श्लोक है। इसमें तुलसीदासजी की कोई भी निजी धारणा नहीं है। हमारा विद्वद्वर्ग से यह विनम्र निवेदन है कि उक्त अर्धाली में 'ताडन' शब्द का वाच्यार्थ अर्थ न लेकर इसे कामशास्त्रीय आलोक में ग्रहण करें। इसमें ही इसकी वास्तविक अर्थ संगति है।"73

उपर्युक्त तीनों दृष्टान्तों से यह सिद्ध है कि तुलसीदास जी को नारी विरोधी ठहराने की कुचेष्टा करना उनके प्रति घोर अन्याय होगा। गोस्वामीजी का दृष्टिकोण अत्यंत उदार था, अत्यंत पावन था। उनके युग की सामयिक परिस्थितियों के आलोक में नारी संबंधी विचारों का यदि विश्लेषण करें तो विदित होगा कि वे अपने समय में प्रचलित गलित मान्यताओं से कहीं बहुत आगे थे। इस दृष्टि से वे प्रगतिशील थे पर उनकी प्रगतिशीलता में एक कठोर संयम था, दृढ़ता थी और सबसे बड़ी बात यह थी कि उनकी प्रगतिशीलता आयातित न होकर विशुद्ध रूप से भारतीय संस्कृति के गौरवशाली साँचे में ढली थी।

**संदर्भ :**


1. रामचरित मानस तुलसीदास, (अयोध्याकाण्ड 55/1)
2. वही, (बालकाण्ड 15/2)
3. वही, (बालकाण्ड 15/3)
4. वही, (बालकाण्ड 50/3)
5. वही, (बालकाण्ड 57 क)
6. वही, (बालकाण्ड 17/4)
7. वही, (अयोध्याकाण्ड 122/1)
8. वही, (बालकाण्ड 177/1, 2)
9. वही, (अरण्यकाण्ड 34/1, 2)
10. वही, (सुन्दरकाण्ड 10/1-11/1)
11. वही, (अयोध्याकाण्ड 15/3, 4)
12. वही, (बालकाण्ड 210/2)
13. वही, (अरण्यकाण्ड 16/2)
14. वही, (अरण्यकाण्ड 4/3 से 10)

**15.** वही. (बालकाण्ड 109/1-119/2)

**16.** वही. (अरण्यकाण्ड 34/2)

**17.** यही (बालकाण्ड 101/3)

**18.** यही. (किक्रियाकाण्ड 14/4)

**19.** वही. (लंकाकाण्ड 15 ख/1, 2)

**20.** वही, (अयोध्याकाण्ड 14)

**21.** वही, (अयोध्याकाण्ड 26/3, 4)

**22.** वही, (अयोध्याकाण्ड 46/4)

**23.** वही, (अयोध्याकाण्ड 47)

**24.** वही, (किष्किंधाकाण्ड 20/2, 3)

**25.** वही, (अरण्यकाण्ड 43)

**26.** वही, (अरण्यकाण्ड 43/1)

**27.** वही, (अरण्यकाण्ड 43/4)

**28.** वही, (अरण्यकाण्ड 44)

**29.** वही, (अरण्यकाण्ड 43/1)

**30.** वही, (अरण्यकाण्ड 46 ख)

**31.** वही, (अरण्यकाण्ड 16/3)

**32.** तुलसी दर्शन : बलदेव प्रसाद मिश्र, पृ. 8

**33.** तुलत्तीदास : डॉ. माताप्रसाद गुप्त, पृ. 307

**34.** तुलसीदात्त: आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, पृ. 112

**35.** हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास डॉ. रामकुमार वर्मा, पृ. 494

**36.** रानचरित मानत्त तुलसीदास, (अयोध्याकाण्ड 40/1)

**37.** रामचरित मानस : तुलसीदास, (अयोध्याकाण्ड 33/1)

**38.** वही, (बालकाण्ड 15/23)

**39.** वही, (बालकाण्ड 188)

**40.** वही, (अयोध्याकाण्ड 153/2, 3, 4)

**41.** वही, (अयोध्याकाण्ड 164/1, 2)

**42.** वही, (बालकाण्ड 17/4)

**43.** वही, (अरण्यकाण्ड 5)

**44.** वही, (अयोध्याकाण्ड 64/1-4)

**45.** वही, (अयोध्याकाण्ड 66/1-4)

**46.** वही, (अयोध्याकाण्ड 102/1, 2)

**47.** वही, (अरण्यकाण्ड 26/1, 3)

**48.** वही, (लंकाकाण्ड 35/4)

**49.** वही, (लंकाकाण्ड 35/7)

**50.** वही, (लंकाकाण्ड 36/4)

**51.** वही, (अरण्यकाण्ड 35/4, 5)

**52.** वही, (अरण्यकाण्ड 36)
**53.** वही, (अरण्यकाण्ड 34/2)
**54.** युगद्रष्टा तुलसी: सं. डॉ. लखनलाल खरे, पृ. 16
**55.** वही, पृ. 15
**56.** रामचरितमानस : तुलसीदास, (सुंदरकाण्ड 57)
**57.** वही, (सुंदरकाण्ड 31)
**58.** वही, (सुंदरकाण्ड 9/5)
**59.** वही, (सुंदरकाण्ड 57/3)
**60.** वही, (सुंदरकाण्ड 58/1)
**61.** वही, (सुंदरकाण्ड 58/3)
**62.** वही, (बालकाण्ड 114/4)
**63.** वही, (बालकाण्ड 280/1)
**64.** वही, (बालकाण्ड 280/2)
**65.** वही, (बालकाण्ड 280/1)
**66.** वही, (बालकाण्ड 280/2)
**67.** युग दृष्टा तुलसी सं. डॉ. लखन लाल खरे, पृ. 13
**68.** रामचरितमानस: तुलसीदास, (सुंदरकाण्ड 58/3)
**69.** वही, (अरण्यकाण्ड 16/3)
**70.** वही, (अरण्यकाण्ड 16/7)
**71.** वही, (अरण्यकाण्ड 16/4)
**72.** युगदृष्टा तुलसी सं. डॉ. लखन लाल खरे, पृ. 34
**73.** हिंदी साहित्य युग और प्रवृत्तियाँ डॉ. शिवकुमार शर्मा, पृ. 250

**पंचम अध्याय**

# मानस में नारी के विविध रूप

## (क) मानस के विविध प्रसंग और नारी

'रामचरित मानस' में नारी को विविध रूपों में और विविध प्रसंगों में चित्रित किया गया है। पूर्व में तुलसीदासजी के नारी-विषयक विचारों के पक्ष और विपक्ष में पर्याप्त उल्लेख किया गया है। गोस्वामी के द्वारा नारी के अन्य रूपों का चित्रण भी किया गया है। इन प्रसंगों को भी समझ लेना आवश्यक है। इन विविध रूपों को जानने के लिए 'मानस' के विविध कांडों में नारी पात्रों पर केन्द्रित कथाओं पर संक्षिप्ततः प्रकाश डालना समीचीन होगा-

### 1. बालकाण्ड

'रामचरितमानस' के सात काण्डों में प्रथम काण्ड है-बालकाण्ड। इस काण्ड में नारी केन्द्रित निम्नलिखित प्रसंग हैं-

1. शिव-पार्वती संवाद एवं पार्वती का संदेह
2. पार्वती का अग्निदाह
3. शिव-पार्वती विवाह
4. नारद मोह
5. मनु सतरूपा प्रसंग
6. रानियों का रामादि पुत्रों की प्राप्ति
7. ताड़का वध
8. अहल्या कथा
9. पुष्प वाटिका प्रसंग
10. सीता-विवाह

### 2. अयोध्याकाण्ड

1. कैकेई-गंथरा संवाद

2. कैकेई द्वारा वर माँगना

3. सीता का राम के साथ वन गमन का निश्चय

4. सुमित्रा-लक्ष्मण संवाद

5. भरत-कैकेई-भरत-कौशल्या-संवाद

6. ग्रामीण-वधुओं और सीताजी का संवाद

**3. अरण्यकाण्ड**

1. सीता-अनुसूया प्रसंग
2. सीताजी का अग्नि प्रवेश
3. सीताहरण
4. शबरी प्रसंग

**4. किष्किंधाकाण्ड**

1. तारा विलाप
2. तपस्विनी वृतांत

**5. सुंदरकाण्ड**

1. सीता-रावण संवाद
2. त्रिजटा-सीता संवाद
3. मंदोदरी द्वारा रावण को समझाना

**6. लंकाकाण्ड**

1. मंदोदरी द्वारा रावण को बारंबार समझाना
2. सीताजी की अग्नि परीक्षा कोई प्रसंग नहीं।

**7. उत्तरकाण्ड**

उपर्युक्त प्रसंग जनसाधारण में इतने चर्चित हैं कि यहाँ उनका उल्लेख करना सर्वथा असंगत है। परंतु विषय के स्पष्टीकरण हेतु इन प्रसंगों का संदर्भानुसार प्रयोग करना नितांत आवश्यक है।

**1. बालकाण्ड**

बालकाण्ड में शिव पार्वती कथा, पुष्पवाटिका प्रसंग और सीता विवाह विस्तार पूर्वक वर्णित हैं। नारद मोह, मनु शतरूपा प्रसंग, ताड़का वध और अहिल्या प्रसंगों को अति संक्षेप में कहा गया है। इन्हीं संक्षिप्त स्थलों का विवेचन यहाँ अभिप्रेत है।

**नारद मोह**

मनुष्य का सौंदर्य के प्रति आकर्षण उसकी सहज और प्राकृतिक प्रवृत्ति है। प्रकृति सहज सुंदर है, अतः मानव मन उस ओर बिद्ध होता है। नारी में सहज सौंदर्य होता है, इसके साथ ही उसमें सौकुमार्य, मसृणता तथा लज्जा जैसे तत्व भी समाहित होते हैं। पुरुष इन गुणों से शून्य होता है।

नारद मोह का प्रसंग यद्यपि नारद के गर्व को दूर करने के मूल उद्देश्य में निहित है तथापि इस गर्व को दूर करने का माध्यम नारी को बनाया गया है। कथानक कुल इतना सा है कि नारद के घोर तप को देखकर देवताओं के राजा इन्द्र को यह आशंका हुई कि कहीं ये मेरा सिंहासन न छीन ले। नारद का तप नष्ट करने के लिए इन्द्र ने कामदेव को भेजा। कामदेव ने अपना इतना प्रताप प्रदर्शित किया कि जड़-जगत भी काममय हो गया, चेतन की तो बात क्या-

**सब के हृदय मदन अभिलाषा।**

**लता निहारि नवहिं तरु साखा**

**नदी उमगि अंबुधि कहुँ धाई।**

**संगम करहिं तलाव तलाई ।।**

**जहँ असि दसा जड़न्ह कै बरनी।**

**को कहि सकइ सचेतन करनी ।।**

**पसु पच्छी नभ जल थल चारी।**

**भए काम बस समय बिसारी ।।**

**मदन अंध ब्याकुल सब लोका।**

**निसि दिनु नहिं अवलोकहिं कोका ।।**

**देव दनुज नर किन्नर ब्याला।**

**प्रेत पिसाच भूत बेताला ।।**

**इन्ह कै दसा न कहेउँ बखानी।**

**सदा काम के चेरे जानी ।।**

**सिद्ध बिरक्त महामुनि जोगी।**

**तेपि कामबस भए बियोगी ।।**

**भए कामबस जोगीस तापस पावँरन्हि की को कहै।**

**देखहिं चराचर नरिमय जे ब्रम्हमय देखत रहै।।**

**अबला बिलोकहिं पुरुषमय जगु पुरुष सब अबलामयं ।**

**दुइ दण्ड भरि ब्रम्हांड भीतर कामकृत कौतुक अयं ।।**

यद्यपि उपर्युक्त पंक्तियाँ मानस के उस प्रसंग की हैं, जब कामदेव ने शिव-समाधि को भंग करने के लिए अपनी माया का विस्तार किया था। परंतु चाहे शिव हों या नारद, कामदेव का लक्ष्य तो एक ही है- काम-जाग्रत करना। कामदेव को पराजय दोनों ही जगह प्राप्त हुई। शिव ने तो उसे भस्म ही कर दिया, परंतु नारद पर उसका वश न चला। यहीं से नारद के मन में यह गर्व हुआ कि उन्होंने काम पर विजय प्राप्त कर ली। उन्होंने अपनी इस उपलब्धि को ब्रह्मा से कहा और शिव से। शिव द्वारा मना करने के पश्चात् भी नारद ने अपनी काम-विजय का समाचार विष्णु को सगर्व कह दिया। विष्णु ने नारद का गर्व दूर करने के लिए एक माया नगरी की रचना की। श्रीनिवासपुर नामक इस नगरी के राजा शीलनिधि की कन्या विश्वमोहिनी के स्वयंवर में नारद जी पहुँचे। राजा ने कन्या के भाग्य को नारदजी से जानना चाहा तो काम के विजेता नारद उस कन्या पर मोहित होकर उसे स्वयं ही पाने का विचार करने लगे।

कन्या को पाने अर्थात् उससे विवाह रचाने का विचार आते ही नारद, नारद नहीं रहे। वे आम मनुष्य हो गये। आम मनुष्य की ही भाँति इन्हें भी यह भ्रम हो गया कि स्त्रियाँ पुरुष के सौंदर्य पर रीझती हैं और वे हरि से उनका रूप माँग बैठे। हरि ने उन्हें अपना (वानर) रूप दिया और स्वयं सुंदर राजकुमार का रूप धारण कर स्वयंवर में पहुँचे। वानर रूप धारी नारद का वरण तो होना ही नहीं था-राजकुमार के वेश में उपस्थित विष्णु का वरण राजकुमारी ने किया। नारी के लिए मनुष्य कितना अधीर हो उठता है, नारद की व्याकुलता, अधैर्य और छटपटाइट इसे व्यक्त करती है :

**जेहि दिसि बैठे नारद फूली।**

**सो दिसि तेहिं न बिलोकी भूली ।।**

X X X

**दुलहिनि लै गे लच्छिनिवासा।**

**नृपसमाज सब भयउ निरासा ।।**

**मुनि अति बिकल मोहँ मति नाठी।**

**मनि गिरि गई छूटि जनु गाँठी।।**

इस प्रसंग से एक तथ्य स्पष्ट है कि नारी का सौंदर्य वह चुम्बक है जिसकी और प्रत्येक लौह-पुरुष स्वतः ही आकर्षित हो जाता है। चश्यक है का मर्यादित और सहज सौंदर्य पुरुष से शूर्पणखा के कृत्रिम सौंदर्य की नाहित पुरुष से प्रणय-याचना नहीं करता।

नारद मोह एक सहज अवांतर कथा है। इस अर्वातर कथा में नारी विषयक तुलसी का कोई प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष दृष्टिकोण अंतर्निहित नहीं है। परंतु इस प्रसंग को भारतीय नारी की सहज सौंदर्य विषयक चिंतन दृष्टि प्रदान की जा सकती है। इससे एक संदेश और भी ध्वनित होता है कि स्त्री का बाह्य सौंदर्य पुरुष के विवेक का हरण कर लेता है। वह अविवेकी होकर किंकर्तव्यविमूढ़ हो जाता है। नारद भी अविवेकी हो गये। उन्हें अच्छे-बुरे, करणीय-अकरणीय का भाव न रहा। काम विजेता नारद ने काम पीड़ित नारद का रूप धारण कर अपने आराध्य को ही दुर्वचन कह डाले। यहाँ तक कि उन्हें शाप भी दे दिया-

**पर संपदा सकहु नहिं देखी।**

**तुम्हरें इरिषा कपट विसेषी ।।**

**मथत सिंधु रूद्रहि बौरायहु।**

**सुरन्ह प्रेरि बिस पान करायहु ।।**

**असुर सुरा विष संकरहिं आपु रमामनि चारु।**

**स्वास्थ साधक कुटिल तुम्ह सदा कपटु व्यवहारू ।।**

**परम स्वतंत्र न सिर पर कोई।**

**भावई मनहि करहु तुम्ह सोई।।**

**भलेहि मंद मंदेहि भल करहू।**

**बिसमय हरष न हियँ कछु धरहू ।।**

**डहकि डहकि परिचेहु सब काहू।**

**अति असंक मन सदा उछाहू ।।**

**करम सुभासुभ तुम्हहि न बाधा।**

**अब लगि तुम्हहि न काहूँ साधा ।।**

**बंचेहु मोहि जवनि धरि देहा।**

**सोई तन धरहु श्राप मम एहा।।**

नारद ने काम के प्रभाव को प्रभाव शून्य कर दिया-यह उनका भ्रम था। वस्तुतः सौंदर्य काम का जनक है-और यही इसका पोषक भी। यह सौंदर्य नारी-देह में निवास करता है। इस दृष्टि से महत्त्वहीन-सा प्रतीत होने वाला नारद मोह का प्रसंग अत्यंत महत्त्वपूर्ण है।

**मनु शतरूपा प्रसंग**

यह भी 'रामचरितमानस' का एक लघु प्रसंग है। स्वयंभू मनु अनेक वर्षों तक राज्य कर अपनी रानी शतरूपा सहित तप करने वन में गये। हजारों वर्षों तक न केवल महाराज ने अपितु रानी ने भी तप किया-

**द्वादस अच्छर मंत्र पुनि जपहिं सहित अनुराग।**

**बासुदेव पद पंकरूह दंपति मन अति लाग।।4**

प्रभु के प्रसन्न होने पर वरदान भी राजा मात्र ने नहीं, दंपति ने माँगा-

**दम्पति बचन परम प्रिय लागे।**

**मृदुल बिनीत प्रेम रस पागे ।।5**

इतना ही नहीं, जो वरदान राजा ने माँगा, रानी ने उसमें अपनी सहमति व्यक्त की-

**जो बरू नाथ चतुर नृप मागा।**

**सोइ कृपाल मोहि अति प्रिय लागा।।**

राजा ने वर माँगा था- 'चाहहुँ आप समान सुत, रानी ने इस पर अपनी सहमति व्यक्त की। कुछ समय तक दंपति-राजा रानी ने आश्रम में निवास किया-

दंपति उर धरि भगत कृपाला।

तेहिं आश्रम निवसे कछु काला ।।

' कालांतर में यह दंपति अयोध्या के राजा दशरथ कौशल्या के रूप में जन्म लेता है जिनके घर साक्षात् ईश्वर सगुण रूप में अवतरित होता है।

"मनु शतरूपा के पूरे प्रसंग में 'दंपति' शब्द का प्रयोग हुआ है। इसका तात्पर्य यही है कि दंपति भाव से यदि जीवन व्यतीत किया जाए तो उसे निश्चित रूप से ईश्वरीय गुणों से युक्त संतान की प्राप्ति होती है- इसमें कोई संदेह नहीं। स्त्री-पुरुष के कृतित्व को अलग-अलग चश्मे से देखने वालों को तथा तुलसी को नारी विरोधी बताने वालों को इस प्रसंग से शिक्षा ग्रहण करनी चाहिए।"8

**रानियों को रामादि पुत्रों की प्राप्ति**

चरु-सेवन के फलस्वरूप गर्भवती हुई कौशल्यादि रानियों को निश्चित अवधि में पुत्रों का प्राकट्य हुआ। सर्वप्रथम राम-जन्म हुआ। राम-जन्म सुनकर समस्त रानियाँ कौशल्या के पास चली आयीं-

**सुनि सिसु रुदन परम प्रिय बानी।**

**संभ्रम चलि आईं सब रानी।।**

भरत-लक्ष्मण-शत्रुघ्न का प्राकट्य तो श्रीराम के प्राकट्य के पश्चात् हुआ-

**कैकयसुता सुमित्रा दोऊ।**

**सुंदर सुत जनमत भैं ओऊ ।। 10**

यह प्रसंग अवश्य ही महत्वहीन प्रतीत होता है। परंतु ध्वनित यही होता है कि बहुपत्नीत्व प्रथा के काल में परिवार में शांति स्थापन तभी संभव है, जब नारियों में परस्पर पुत्रों के प्रति स्वपुत्र-सा प्रेम हो। सौतिया डाह से परिवार की समृद्धि संभव नहीं है।

**ताड़का वध**

ताड़का के संबंध में मानस में मात्र दो चौपाइयाँ उपलब्ध हैं-

**चले जात मुनि दीन्हि देखाई। सुनि ताड़का क्रोध करि धाई ।।**

**एकहिं बान प्रान हरि लीन्हा। दीन जानि तेहि निज पद दीन्हा ।।"**

दो चौपाइयों के इस प्रसंग में यद्यपि कुछ स्पष्ट नहीं है। फिर भी यह स्पष्ट है कि मुनि को देखकर ताड़का जब क्रोधित होकर उनकी ओर दौड़ी तो श्रीराम ने एक ही बाण में उसके प्राण ले लिये और उसे 'दीन' समझकर अपना पद दे दिया अर्थात् तार दिया।

"ताड़का राक्षस कुल की थी और तामसी स्वभाव की थी। अतः उसकी मति और गति सामाजिक न थी। इसीलिए वह तुलसी की दृष्टि में दया की पात्र अर्थात् दीन थी। ऐसी नारियों के प्रति गोस्वामीजी का दृष्टिकोण उदार है।"12

**अहल्या कथा**

गौतम ऋषि की अनिंद्य सुंदरी पत्नी अहल्या का इन्द्र ने छल पूर्वक सतीत्व नष्ट किया। अहल्या का इस कुकर्म में न तो कोई सहयोग था और न ही कोई सहमति। वह पूर्णतः निर्दोष थी। फिर भी पुरुष प्रधान समाज की मानसिकता से युक्त गौतम ऋषि ने दोषी अपनी पत्नी को ठहराया और उसे शाप देकर पत्थर बना दिया-

**गौतम नारि श्राप बस उपल देह धरि धीर।**

**चरन कमल रज चाहति कृपा करहु रघुबीर ।/13**

"गोस्वामीजी ने इस परम्परागत कथानक को विस्तार नहीं दिया, परंतु यथावत संक्षिप्ततः ग्रहण किया। मौलिकता इस प्रसंग में इतनी है कि जहाँ आत्मग्लानि के कारण वह स्वयं को मैं नारि अपावन और मैं मति भोरी जैसे शब्दों से स्वयं की भर्त्सना करती है, तुलसी उसके प्रति उदार दृष्टि रखते हैं। तुलसी उसे तप पुंज जैसे पावन शब्द से संबोधित करते हैं, वे अहल्या को दोषी नहीं मानते-

**परसत पद पावन सोक नसावन प्रगट भई तपपुंज सही। 14**

बालकाण्ड में विभिन्न कथाओं के प्रायः यही लघु प्रसंग हैं, जिनके केन्द्र में किसी-न-किसी रूप में नारी है। शेष प्रसंग विशद् हैं, जो यहाँ अभिप्रेत नहीं हैं।

**2. अयोध्याकाण्ड**

अयोध्याकाण्ड में प्रमुख नारी पात्र दो ही हैं-मंथरा और कैकेई। ये दोनों ही विध्वंसक नारी पात्र की श्रेणी में हैं। मंथरा कैकई संवाद फिर कैकेई द्वारा दशरथजी से दो वरदानों की माँग करना-इन दोनों को निकृष्ट नारियों की कोटि में खड़ा कर देता है। परंतु अल्प प्रचलित और अमहत्वपूर्ण कतिपय प्रसंग इस काण्ड में हैं जिनमें नारी की भूमिका प्रमुख रही है। इनके विवेचन के द्वारा गोस्वामीजी के नारी विषयक दृष्टिकोण को समझा जाएगा।

**सीता का राम के साथ वन-गमन का निश्चय:**

तुलसी के नारी विषयक दृष्टिकोण को समझने के लिए यह लघु, किंतु महत्त्वपूर्ण प्रसंग है। श्रीराम के वनगमन का समाचार पाकर सीता व्याकुल हो उठती हैं। वे पति के साथ वन में जाना चाहती हैं, परंतु मर्यादा में आबद्ध सीता श्रीराम के सम्मुख अपने हृदय के भाव व्यक्त नहीं करतीं। वे श्रीराम से यह बात न कहकर अपनी सास कौशल्याजी से कहती हैं-

**समाचार तेहि समय सुनि सीय उठी अकुलाई।**

**जाइ सासु पद कमल जुग बंदि बैठि सिरु नाइ ।। 5**

सीताजी का संदेश कौशल्या द्वारा राम को दिया जाता है। इसके पश्चात् सीताजी को मनाने का क्रम प्रारंभ हो जाता है। उन्हें वन के भयावह

दृश्य दिखाये जाते हैं, सास-ससुर और परिजनों की सेवा करने का शास्त्र सम्मत उपदेश दिया जाता है, परंतु सीता जी का मन विचलित नहीं होता। दशरथजी, गुरु-पत्नी, मंत्री की पत्नी आदि सब सीताजी को वन न जाने का आग्रह करते हैं, पर वे सबसे अप्रभावित रहकर अपने निश्चय पर अडिग रहती हैं। राम द्वारा उन्हें अति सुकुमारता का वास्ता देकर कहा जाता है कि वे वन जाने के योग्य नहीं हैं। सीताजी, राम के इस कथन पर तीक्ष्ण व्यंग्य करती हैं:

**मैं सुकुमारि नाथ बन जोगू।**

**तुम्हहिं उचित ताप मो कहँ भोगू। 16**

"बस इसी एक व्यंग्यात्मक चौपाई में ही इस प्रसंग का समूचा सार निहित है। भारतीय नारी अपना सारा सौकुमार्य, सारा वैभव, सारे संबंध अपने जीवन-धन पर सहर्ष एवं निःस्वार्थ अर्पित कर देती है। समय आने पर फूल से भी अधिक कोमल नारी वन के कठोर प्रस्तरों, कण्टकों तथा समूची वानिकी परिस्थिति से स्वयं को एकाकार कर लेती है। सीता, मोम की गुड़िया का लेबल उतार कर फेंक देती है। "17

**सुमित्रा-लक्ष्मण संवाद**

यह भी अत्यंत संक्षिप्त प्रसंग है। राम के वन गमन का समाचार सुनकर लक्ष्मण व्याकुल होकर दौड़ पड़े। वे राम के साथ वन जाने को उद्यत हो जाते हैं। पर उन्हें आशंका है कि श्रीराम मुझे साथ ले जाएँगे अथवा नहीं। वे श्रीराम से अपनी बात कहते हैं-

**समाचार जब लक्षिमन पाए।**

**ब्याकुल बिलख बदन उठि धाए ।।**

X X X

**मो कहुँ काह कहब रघुनाथा।**

**रखिहहिं भवन कि लेइहिं साथा।। 18**

श्रीराम, अवध तथा भाई भरत के अवध में न होने का संदर्भ देते हुए को वन में ले जाने में असमर्थता व्यक्त करते हैं- लक्ष्मण

**भवन भरत रिपुसूदनु नाहीं।**

**राउ बृद्ध मम दुखु मन माहीं।।**

**मैं बन जाउँ तुम्हहि लेइ साथा।**

**होइ सबहि बिधि अवध अनाथा ।।19**

परंतु लक्ष्मणजी किसी भी स्थिति में अयोध्या में रुकने को तैयार नहीं। अंततः श्रीराम, माँ से आज्ञा लेने के लिए कहते हैं। लक्ष्मणजी माता सुमित्रा से राम के साथ वन जाने की आज्ञा माँगते हैं। लक्ष्मणजी द्वारा अपनी माता से राम के साथ वन जाने की आज्ञा माँगने पर सुमित्रा की प्रतिक्रिया द्रष्टव्य है:

**तात तुम्हारि मातु वैदेही।**

**पिता रामु सब भाँति सनेही ।।**

**अवध तहाँ जहँ राम निवासू ।**

**तहँइँ दिवसु जहँ भानु प्रकासू ।।**

**जौं पै सीय रामु बन जाहीं।**

**अवध तुम्हार काजु कछु नाहीं। १०**

X X X

**तुम्हरेहिं भाग रामु बन जाहीं।**

**दूसर हेतु तात कछु नाहीं।।**

**सफल सुकृत कर बड़ फलु एहू ।**

**राम सीय पद सहज सनेहू ।।**

**रागु रोषु इरिषा मदु मोहू।**

**जनि सपनेहुँ इन्ह के बस होहू ।।**

**सकल प्रकार बिकार बिहाई।**

**मन क्रम बचन करेहु सेवकाई ।।**

**तुम्ह कहुँ बन सब भाँति सुपासू ।**

**संग पितु मातु राम सिय जासू ।।**

**जेहिं न रामु बन लहहिं कलेसू ।**

**सुत सोइ करेहु इहइ उपदेसू ।।**

**उपदेसु यहु जेहिं तात तुम्हरे राम सिय सुख पावहीं।**

**पितु मातु प्रिय परिवार पुर सुख सुरति बन बिसरावहीं ।।**

**तुलसी प्रभुहि सिख देइ आयसु दीन्ह पुनि आसिष दई।**

**रति होउ अबिरल अमल सिय रघुबीर पद नित नित नई।**

सुमित्राजी स्पष्ट रूप से अपने पुत्र के प्रति कथन करती हैं कि यदि श्रीराम और सीता वन को जाते हैं तो तुम्हारा अवध में कोई कार्य नहीं है। तुम्हारे माता-पिता सीता और राम हैं। तुम वह करो जिसमें तुम्हारे माता-पिता को सुख प्राप्त हो। श्रीराम तुम्हारे ही भाग्य से वन में जा रहे हैं। उनके वन

जाने का अन्य कोई कारण नहीं है। अर्थात् तुम्हें श्रीराम और सीता की सेवा का भरपूर लाभ प्राप्त होगा।

"सौत की संतान के प्रति नारी में प्रायः ईर्ष्या का भाव और अपनत्व व ममता का अभाव पाया जाता है। परंतु इस प्रसंग में सुमित्रा के हृदय में इस भाव की रंचमात्र भी उपस्थिति नहीं पायी जाती है। सौतेला भाव यहाँ है ही नहीं। इस प्रसंग में नारी की यही महानता सुमित्रा के रूप में व्यंजित हुई है।"22

**ग्रामीण वधुओं और सीताजी का संवाद**

ग्रामीण नारियों की सीता के साथ सहज सहानुभूति इस प्रसंग में परिलक्षित होती है। सीताजी श्रीराम और लक्ष्मण सहित वन मार्ग में हैं। मार्ग के ग्रामों के निकट से वे जा रहे हैं। उनके सौंदर्य को देखकर ग्राम वधुओं के सहज भाव :

**सीय समीप ग्रामतिय जाहीं।**

**पूँछत अति सनेहँ सकुचाही ।।**

**बार बार सब लागहिं पाएँ।**

**कहहिं बचन मृदु सरल सुभाएँ।।**

**राजकुमारि बिनय हम करहीं।**

**तिय सुभायँ कछु पूँछत डरहीं।।**

**स्वामिनि अबिनय छमबि हमारी।**

**बिलगु न मानब जानि गबाँरी ।।**

**स्यामल गौर किसोर बर सुंदर सुषमा ऐन।**

**सरद सर्बरीनाथ मुखु सरद सरोरुह नैन।।**

**कोटि मनोज लजावनिहारे।**

**सुमुखि कहहु को आहिं तुम्हारे ।।**

**सुनि मंजुल सनेहमय बानी।**

**सकुची सिय मन महुँ मुसुकानी ।।**

**तिन्हहिं बिलोकि बिलोकति धरनी।**

**दुहुँ सकोच सकुचति बरबरनी ।।**

**सकुचि सप्रेम बाल मृग नयनी।**

**बोली मधुर बचन पिकबयनी ।।**

**सहज सुभाय सुभग तन गोरे। नामु लखनु लघु देवर मोरे ।।**

**बहुरि बदनु बिधु अंचल ढाँकी।**

**पिय तन चितइ भौंह करि बाँकी ।।**

**खंजन मंजु तिरीछे नयननि।**

**निज पति कहेउ तिन्हहि सिय सयननि ।।**

**भई मुदित सब ग्रामबधूटीं।**

**रंकन्ह राय रासि जनु लूटीं ।।**

**अति सप्रेम सिय पायँ परि बहुबिधि देहिं असीस।**

**सदा सोहागिनि होहु तुम्ह जब लगि महि अहि सीस ।।**

**पारबती सम पतिप्रिय होहू।**

**देबि न हम पर छाड़ब छोहू ।।**

**पुनि पुनि बिनय करिअ कर जोरी।**

**जौं एहि मारग फिरिअ बहोरी ।।**

**दरसनु देब जानि निज दासी।**

**लखीं सीय सब प्रेम पियासी ।।**

**मधुर बचन कहि कहि परितोषीं।**

**जनु कुमुदिनीं कौमुदीं पोषीं। 23**

ग्राम वधुएँ न केवल सीताजी से उनकी कथा जानकर सहानुभूति व्यक्त करती हैं अपितु पति के प्रिय होने का आशीर्वाद भी देती हैं। इतना ही नहीं, पुनः इस मार्ग से लौटने पर दर्शन देने की प्रार्थना भी करती हैं। ग्राम्य और नागर बाला के हृदयों का मनोवैज्ञानिक चित्र इस प्रसंग में है।

**3. अरण्यकाण्ड**

**सीताजी का अग्नि प्रवेश प्रसंग:**

मात्र चार-पाँच चौपाइयों का प्रसंग है यह मानस में। खरदूषण वध के पश्चात् श्रीराम सीता से तब तक अग्नि में वास करने को कहते हैं, जब तक असुरों का संहार न हो जाय। सीता अग्नि में प्रवेश करती हैं और सीता का प्रतिबिंब अग्नि से प्रकट होता है। यह प्रतिबिंब हर प्रकार से सीता के सदृश था-

**सुनहु प्रिया व्रत रुचिर मैं कछु करबि ललित सुसीला। नरलीला ।।**

**निवासा । जौ लगि करौं निसाचर नासा ।। तुम्ह पावक महुँ करहु**

**जबहिं राम सब कहा बखानी। प्रभु पद धरि हियँ अनल समानी।।**

**निज प्रतिबिंब राखि तहँ सीता। तैसइ सील रूप सुबिनीता ।।**

**लछिमनहूँ यह मरमु न जाना। जो कछु चरित रचा भगवाना। 4**

"प्रस्तुत प्रसंग में नारी की समर्पण और सहयोग भावना वर्णित है। नारी समर्पण भाव से अग्नि-प्रवेश के लिए भी तत्पर हो जाती है, पल भर का विलंब भी नहीं करती, न कुछ कहती-सुनती है। दुष्ट दलनार्थ और समाज राष्ट्र के कल्याणार्थ नारी का यह उत्सर्ग वंदनीय है, पूज्यनीय है। "25

**सीताहरण**

सीता के अग्नि प्रवेश के ठीक पश्चात् का प्रसंग है-सीताहरण का। मारीच स्वर्ण-मृग का कपटी वेष बनाकर सीता की पर्णकुटी के पास ही विचरण करता है। सीता उस स्वर्ण मृग की छाल पाने हेतु श्रीराम से अनुरोध करती हैं। श्रीराम उसका वध करने के लिए उसके पीछे दौड़ते हुए कुटी से बहुत दूर निकल जाते हैं। इसी मध्य रावण सूनी पर्णकुटी से सीताजी का हरण कर लेता है। प्रस्तुत प्रसंग में सीताजी का विलाप अवलोकनीय है-

**हा जग एक बीर रघुराया।**

**केहिं अपराध बिसारेहु दाया ।।**

**आरति हरन सरन सुखदायक ।**

**हा रघुकुल सरोज दिननायक ।।**

**हा लछिमन तुम्हार नहिं दोसा।**

**सो फल पायउँ कीन्हेउँ रोसा ।।**

**बिबिध विलाप करति बैदेही।**

**भूरि कृपा प्रभु दूरि सनेही ।।**

**बिपति मोरि को प्रभुहि सुनावा।**

पुरोडास चह रासभ खावा। 26 मानस के लघु प्रसंगों में आये हुए नारी पात्रों की स्थिति में सीताहरण और सीता विलाप प्रसंग अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। अनेक मानस-मर्मज्ञों तथा मानस के प्रवचनकर्ताओं ने इस प्रसंग में सीता के रूप में नारी की उस दुर्बलता की ओर संकेत किया है, जो उसकी आभूषणों के प्रति होती है। स्वर्ण या समृद्धि

का लोभ नारी संवरण नहीं कर पाती और यही उसके भावी कष्टों का कारण बनती है। जब उसे वह दुख प्राप्त होता है तब पश्चाताप होता है और बीती हुई भूलें याद आती हैं। नारी का एक दुर्बल पक्ष इस प्रसंग में अन्तर्निहित है।

**शवरी प्रसंग**

शबरी प्रसंग इस अर्थ में महत्वपूर्ण है कि जिस काल में वर्णाश्रम धर्म अपने चरम पर था और नारियों की दशा समाज में शोचनीय थी, उस काल में शबरी जैसा पात्र सृजित कर नई दिशा देने का प्रयास तुलसीजी ने किया। तुलसी की नारी विषयक उदार धारणा का सबसे बड़ा प्रमाण यही है कि 'दलित' नारी को भी वे सम्मान और गौरव प्रदान करते हैं। यह अलग बात है कि हजारों वर्षों से दबी कुचली नारी ग्रंथि के कारण स्वयं को अधम से अधम और जड़मति कहती है। यह कथन तुलसी का नहीं है-

**केहि बिधि अस्तुति करौं तुम्हारी।**

**अधम जाति मैं जड़मति भारी ।।**

**अधम ते अधम अधम अति नारी।**

**तिन्ह महँ मैं मतिमंद अधारी। 28**

**4. किष्किन्धाकाण्ड**

किष्किन्धाकाण्ड में मात्र दो स्थलों पर नारी पात्रों का उल्लेख हुआ है। प्रथम तारा विलाप और दूसरे तपस्विनी के संदर्भ में। बालि वध के पश्चात् तारा विलाप करती है। अपनों का चिरवियोग रूदन और क्रन्दन का कारण बनता है-यह सांसारिक रीति है। तारा साधारण नारी है। अतः बालि के चिर वियोग के पश्चात् उसका रुदन सहज और स्वाभाविक है। परिजनों का रुदन और लोगों द्वारा पीड़ित को ज्ञान देना सहज सांसारिक प्रक्रिया है-

**नाना बिधि बिलाप कर तारा।**

**छूटे केस न देह सँभारा।।**

**तारा बिकल देखि रघुराया।**

**दीन्ह ग्यान हरि लीन्ही माया। 29**

दूसरा लघु प्रसंग है-तपस्विनी का। इस प्रसंग का मात्र दृश्य प्रस्तुत किया है गोस्वामीजी ने। सीता की खोज में लगे वानर तृषातुर हो उठे। चारों ओर देखने पर जल न मिला, तब हनुमान ने एक पर्वत की चोटी पर चढ़कर चारों ओर देखा। भूमि पर एक गुफा दिखी जिसमें बगुले हंसादि उड़ रहे थे

बहुत से खग उसमें प्रविष्ट हो रहे थे। हनुमानजी समस्त वानरों को लेकर उस गुफा में गये। वहाँ उन्होंने अति सुंदर उपवन और कमलों से युक्त सरोवर देखा। वहाँ एक सुंदर मंदिर में एक तपः तेज नारी बैठी हुई थी-

**दीख जाइ उपबन बर सर बिगसित बहु कंज।**

**मंदिर एक रुचिर तहँ बैठि नारि तप पुंज ।**

यह तपस्विनी वानरों को आश्वस्त करती है, अपनी सब कथा सुनाती है। उसका अपना वृतान्त क्या था, यह गोस्वामी जी ने स्पष्ट नहीं किया, तपस्विनी द्वारा कहने पर वानर भालू अपनी आँखें बंद करते हैं, खोलने पर स्वयं को समुद्र तट पर पाते हैं। तपस्विनी राम के पास जाती है और श्रीराम की आज्ञा पाकर वह बदरी वन चली जाती है:

**तेहिं सब आपनि कथा सुनाई।**

**मैं अब जाब जहाँ रघुराई ।।**

**मूदहु नयन बिबर तजि जाहू।**

**पैहहु सीतहि जनि पछिताहू ।।**

**नयन मूदि पुनि देखहिं बीरा।**

**ठाढ़े सकल सिंधु के तीरा ।।**

**सो पुनि गई जहाँ रघुनाथा।**

**जाइ कमल पद नाएसि माथा ।।**

**नाना भाँति बिनय तेहिं कीन्हीं।**

**अनपायनी भगति प्रभु दीन्ही ।।**

**बदरीबन कहुँ सो गई प्रभु अग्या धरि सीस।**

**उर धरि राम चरन जुग जे बंदत अज ईस।**

इस प्रसंग से इतना तो स्पष्ट है कि उस काल में नारियाँ भी तप करती थर्थी और उनके स्वतंत्र आश्रम हुआ करते थे। पर प्रसंग यह बतलाता है कि बिना नारी के मार्गदर्शन के कोई कार्य सफल हो नहीं सकता। किंकर्तव्यविमूढ़ वानरों को सीताजी तक पहुँचने का मार्ग तपपुंज नारी ने ही सुझाया। खोज यात्रा में वानरों को पुरुष भी मिले होंगे, पर कार्य सिद्धि नारी द्वारा ही हुई। 32

**5. सुंदरकाण्ड**

**सीता-रावण संवाद**

सुंदरकाण्ड का यह प्रसंग नारी की दृढ़ता प्रदर्शित करता है। अपने सतीत्व को अपना सर्वस्व मानने वाली नारी न प्रलोभनों के समक्ष झुकती है

और न ही अपने प्राणों की चिंता करती है। सीता का हरण करने वाला रावण मात्र एक बार उसकी ओर देखने का आग्रह करता है। इसके बदले वह मंदोदरी आदि समस्त रानियों को सीता की दासी तक बनाने को तैयार है। रावण साम-दाम दण्ड भेद चारों प्रकार से सीता को समझाता है-

**तेहि अवसर रावनु तहँ आवा।**

**संग नारि बहु किएँ बनावा ।।**

**बहु बिधि खल सीतहि समुझावा।**

**साम दान भय भेद देखावा ।।**

**कह रावनु सुनु सुमुखि सयानी।**

**मंदोदरी आदि सब रानी ।।**

**तव अनुचरीं करउँ पन मोरा।**

**एक बार बिलोकु मम ओरा। 3**

**परंतु सीता उसकी ओर देखकर बात करना भी स्वीकार्य नहीं करतीं।**

**तिनके की ओट लेकर रावण को खरी खोटी सुना देती हैं-**

**तृन धरि ओट कहति बैदेही।**

**सुमिरि अवधपति परम सनेही ।।**

**सुनु दसमुख खद्योत प्रकासा।**

**कबहुँ कि नलिनी करइ बिकासा ।।**

**अस मन समुझु कहति जानकी।**

**खल सुधि नहिं रघुबीर बान की।।**

**सठ सूनें हरि आनेहि मोही।**

**अधम निलज्ज लाज नहिं तोही। 34**

सीता कहती हैं कि रे शठ ! तुझे अभी श्रीराम के बाणों का प्रताप ज्ञात नहीं है। रे अधम ! तू निर्लज्ज है, तुझे तनिक भी लाज नहीं है। तू मुझे सूना पाकर हरण करके लाया है। सीता के रूप में यहाँ नारी की दृढ़ता, उसका साहस और निर्भयता वन्दनीय है। इस प्रसंग की सीता रूपी नारी में ये गुण आरोपित कर तुलसी ने नारी का न केवल गौरव बढ़ाया है, यह भी संकेत किया है कि विषम परिस्थितियों में भी नारी को अपना साहस नहीं खोना चाहिए। प्रस्तुत प्रसंग में कहीं भी सीताजी के आँसू नहीं निकलते। न रोती है और न ही घबराती हैं, अपितु निर्भय होकर परिस्थिति का सामना करती हैं।

**त्रिजटा-सीता प्रसंग**

त्रिजटा राक्षसी है, परंतु उसके गुण मानवीय हैं। यह नारी रावण दल में है परंतु रामभक्त है, निपुण है और विवेकशील है-

**त्रिजटा नाम राच्छसी एका।**

**राम चरन रति निपुन बिबेका।।**

रावण जब सीताजी को अपनी ओर आकर्षित करने में विफल रहता है तब वह राक्षसियों को आज्ञा देता है और सीता राक्षसियों को एक डरावना स्वप्न सुनाती है कि एक वानर ने लंका जला दी, सारी सेना मार दी। रावण नग्न होकर गधे पर सवार है, उसका सिर मुड़ा हुआ है और बीसों भुजाएँ खंडित हैं। वह दक्षिण दिशा को जा रहा है। लंका का राज्य विभीषण को मिल गया है। हे राक्षसियो! तुम लोग देखना, यह स्वप्न एक दिन सत्य होगा। स्वप्न सुनकर राक्षसियों डर जाती हैं और सीता को त्रास देना बंद कर उनके चरणों में गिर जाती हैं-

**सबन्हौ बोलि सुनाएसि सपना।**

**सीतहि सेइ करहु हित अपना ।।**

**सपनें बानर लंका जारी।**

**जातुधान सेना सब मारी ।।**

**खर आरुढ़ नगन दससीसा।**

**मुडित सिर खंडित भुज बीसा।।**

**एहि बिधि सो दच्छिन दिसि जाई।**

**लंका मनहुँ बिभीषन पाई ।।**

**नगर फिरी रघुबीर दोहाई।**

**तब प्रभु सीता बोलि पठाई ।।**

**यह सपना मैं कहहुँ पुकारी।**

**होइहिं सत्य गये दिन चारी ।।**

**तासु बचन सुनि ते सब पाई ।।**

**जनक सुता के चरनन्हि परीं।**

त्रिजटा की यह नीति सफल हो जाती है और राक्षसियाँ सीता को सताना बंद कर उनकी शरणागत हो जाती हैं। त्रिजटा की सहृदयता देख सीता को उस पर विश्वास हो जाता है कि यह स्त्री मेरी सहयोगिनी है। सीता हाथ जोड़कर त्रिजटा का आभार मानो व्यक्त कर रही हो-

त्रिजटा सन बोलीं कर जोरी।

मातु बिपति संगिनि तै मोरी।।

तजौं देह करू बेगि उपाई।

दुसह बिरहु अब नहिं सहि जाई।।

आनि काठ रचु चिता बनाई।

मातु अनल पुनि देहि लगाई।।

सत्य करहि मम प्रीति सयानी।

सुनै को श्रवन सूल सम बानी।।

सुनत बचन पद गहि समुझाएसि।

प्रभु प्रताप बल सुजसु सुनाएसि ।।

निसि न अनल मिल सुनु सुकुमारी।

असि कहि सो निज भवन सिधारी। 7

नारी पर संकट के समय त्रिजटा की भाँति सहानुभूति और सांत्वना प्राप्त हो जाना नारी को बहुत बड़ा संबल प्राप्त हो जाता है। विशेष रूप से ऐसी कठिन स्थिति में, जब चारों ओर शत्रु पक्ष का आवरण हो, उनका आतंक चारों ओर हो और मित्र पक्ष का कहीं कोई दूर-दूर तक चिह्न न हो। त्रिजटा अपने प्राणों की चिंता न करते हुए सीता का सहयोग करती है और यही इस प्रसंग का सौंदर्य है।

## मंदोदरी द्वारा रावण को समझाना:

भावी संकट को स्त्री अति शीघ्र समझ लेती है। मंदोदरी भी अपने पति पर आने वाले संकट को समझ जाती है और नाना प्रकार से उसे श्रीराम से सुलह करने के लिए समझाती है। यह प्रयास उसका सतत चलता रहता है-

दूतिन्ह सन सुनि पुरजन बानी।

मंदोदरी अधिक अकुलानी ।।

रहसि जोरि कर पति पग लागी।

बोली बचन नीति रस पागी ।।

कंत करष हरि सन परिहरहू।

मोर कहा अति हित हियँ धरहू ।।

समुझत जासु दूत कइ

स्त्रवहिं गर्भ रजनीचर

तासु नारि निज सचिव बोलाई।

पठवहु कंत जो भलाई ।।

**तव कुल कमल बिपिन दुखदाई।**

**सीता सीत निसा सम आई ।।**

**सुनहु नाथ सीता बिनु दीन्हें।**

**हित न तुम्हार संभु अज कीन्हें।।**

**राम बान अहि गन सरिस निकर निसाचर भेक।**

**जब लगि ग्रसत न तब लगि जतनु करहु तजि टेक।**

मंदोदरी द्वारा अपने पति को बार-बार समझाया जाता है, परंतु अहं में डूबे हुए रावण को कुछ भी समझ में नहीं आता। तुलसी ने इस प्रसंग के द्वारा प्रकारान्तर से नारी की उस विशेषता को बतलाने का प्रयास किया है, जहाँ वह आसन्न खतरे को परख लेती है, उसके आधार पर परिवार के मुखिया को सचेत करती है। यह और बात है कि मनुष्य नारी को सदैव मूढ़, अधम, मतिमंद, गँवार और तुच्छ समझता रहा है तथा रावण की भाँति अपना नाश कराता रहा है।

**6. लंकाकाण्ड**

लंकाकाण्ड में दो ही प्रसंग प्रमुख हैं-मंदोदरी द्वारा पति को बार-बार समझाना और सीता की अग्नि परीक्षा। विवेचन की दृष्टि से सीता की अग्नि परीक्षा का प्रसंग महत्वपूर्ण है। रावण वध के पश्चात् सीताजी को श्रीराम के पास लाया जाता है। श्रीराम जानकीजी से कुछ 'दुर्बाद' करते हैं-

**सीता प्रथम अनल महुँ राखी।**

**प्रगट कीन्हि चह अंतर साखी ।।**

**तेहि कारन करुनानिधि कहे कछुक दुर्बाद।**

**सुनत जातु धानीं सब लागीं करै विषाद ।**

यह पौराणिक आख्यान है कि मूल सीता को हरण के पूर्व ही अग्नि में मरण तक के क्रियाकलाप सम्पन्न हुए थे। मूल सीता को प्राप्त किया जाना था, अतः सबके सामने अग्नि परीक्षा की पूर्वपीठिका के रूप में श्रीराम को 'दुर्बाद' का नाटक करना पड़ा। इस 'दुर्बाद' के कारण सीता का अग्नि प्रवेश हुआ और मूल सीता को प्राप्त किया गया-

**प्रभु के बचन सीस धरि सीता।**

**बोली मन क्रम बचन पुनीता ।।**

**लछिमन होहु धरम के नेगी।**

**पावक प्रगट करहु तुम्ह बेगी ।।**

**सुनि लछिमन सीता कै बानी।**

**बिरह बिबेक धरम निति सानी ।।**

**लोचन सजल जोरि कर दोऊ।**

**प्रभु सन कछु कहि सकत न ओऊ ।।**

**देखि राम रुख लछिमन धाए।**

**पावक प्रगटि काठ बहु लाए ।।**

**पावक प्रबल देखि बैदेही।**

**हृदय हरष नहिं भय कछु तेही ।।**

**जौ मन बच क्रम मम उर माहीं।**

**तजि रघुबीर आन गति नाहीं ।।**

**तौ कृसानु सब कै गति जाना।**

**मो कहुँ होउ श्रीखंड समाना ।।**

**श्रीखंड सम पावक प्रबेस कियो सुमिरि प्रभु मैथिली।**

**जय कोसलेस महेस बंदित चरन रति अति निर्मली ।।**

**प्रतिबिंब अरू लौकिक कलंक प्रचंड पावक महुँ जरे।**

**प्रभु चरित काहुँ न लखे नभ सुर सिद्ध मुनि देखहिं खरे।**

परंतु इस पौराणिक आख्यान से हटकर नारी स्वातंत्र्य के आधुनिक मनीषियों ने इस प्रसंग को सीता की विशुद्धता पर राम द्वारा प्रश्नचिह्न लगाने से जोड़ दिया। इसके पश्चात् नारी स्वातंत्र्य को प्रमुख केन्द्र बनाकर तुलसी पर इतने नारी विरोधी लांछन लगाये गये कि उनकी आत्मा निश्चित ही कसक उठी होगी।

'मानस' के जितने भी लघु प्रसंग हैं, उनके आलोड़न से स्पष्ट है कि गोस्वामी तुलसीदासजी ने कहीं भी नारी का सम्मान गिराया नहीं है। गोस्वामीजी ने नारी की उदात्त गरिमा को और उन्नत किया है। समाज निर्माण के मूल घटक स्त्री-पुरुष ही हैं। यदि पुरुषों में अच्छाइयाँ और बुराइयाँ हैं, तो स्त्रियाँ भी अच्छी और बुरी हैं। सच तो यह है कि पुरुष समाज में यदि राम और रावण जैसे तत्व उपस्थित हैं तो नारी समाज में भी सीता और शूर्पणखा जैसी उत्कृष्ट व निकृष्ट नारियाँ हैं। स्वस्थ समाज के लिए हमें राम और सीता की प्राण प्रतिष्ठा करनी होगी तथा रावण और शूर्पणखा को बहिष्कृत करना होगा। तभी हम आदर्श की ओर उन्मुख हो सकेंगे और तभी रामराज्य का स्वप्न साकार हो सकेगा।

**(ख) नारी प्रताड़क : तुलसी की दृष्टि में**

मात्र ढोल-गँवार शूद्र पशु नारी और सीता की अग्नि परीक्षा प्रसंग के कारण गोस्वामीजी आज के तथाकथित बुद्धिजीवियों और नारी-विमर्श आंदोलन के शिकार हो गये। सब एक स्वर से तुलसी को नारी विरोधी बताने पर जुट गये। तुलसी के काल, राज और परिस्थितियों को भुलाकर तमाम विश्लेषक तुलसी की नारी विषयक दृष्टि को नारी गरिमा के विरुद्ध प्रचारित करने लगे। बड़ी विषम स्थितियों उत्पन्न हो गयीं। ये आलोचक भूल गये कि शबरी जैसे समाज के निम्न स्तर पर खड़े नारी पात्र को तुलसी ने ही गौरव और गरिमा प्रदान की।

'रामचरितमानस' में गोस्वामीजी ने उन प्रसंगों की भी मौलिक सृष्टि की है, जहाँ नारी को पीड़ित करने पर या नारी का अपमान करने पर दण्ड की व्यवस्था है। भरत-शत्रुघ्न ननिहाल से अयोध्या लौटने पर देखते है कि श्रीराम का वन-गमन हो गया और दशस्थजी स्वर्ग सिधार गये। इसके मूल में कैकेई होने के कारण उन्हें हार्दिक दुख हुआ। इससे भी अधिक दुख तब हुआ, जब उन्हें ज्ञात हुआ कि भरत के लिए कैकेई माँ द्वारा राजगद्दी माँगी गयी है। ग्लानि से भरे हुए भरत माँ कौशल्या के पास जाते हैं और अपना स्पष्टीकरण देते हुए कहते हैं कि यदि इस घटना क्रम में मेरी रंचमात्र भी सहमति हो तो मुझे विधाता वह गति दे अर्थात् वह दण्ड दे, जो तमाम कुकृत्य करने वालों को प्राप्त होती है-

**छल बिहीन सुचि सरल सुबानी।**

**बोले भरत जोरि जुग पानी ।।**

**जे अघ मातु पिता सुत मारें।**

**गाइ गोठ महिसुर पुर जारें ।।**

**जे अघ तिय बालक बध कीन्हें।**

**मीत महीपति माहुर दीन्हें।।**

**जे पातक उपपातक अहहीं।**

**करम बचन मन भव कबि कहहीं।।**

**ते पातक मोहि होहुँ बिधाता।**

**जौं यहु होइ मोर मत माता ।।**

**जे परिहरि हरि हर चरन भजहिं भूतगन घोर।**

**तेहि कइ गति मोहि देउ बिधि जौं जननी मत मोर।।**

**बेचहिं बेदु धरमु दुहि लेहीं।**

**पिसुन पराय पाप कहि देहीं।।**

**कपटी कुटिल कलहप्रिय क्रोधी।**

**बेद बिदूषक बिस्व बिरोधी ।।**

**लोभी लंपट लोलुपचारा।**

**जे ताकहिं परधनु परदारा ।।**

**पावौं मैं तिन्ह कै गति घोरा।**

**जौं जननी यहु संमत मोरा।**

भरत जी निश्छल हृदय से कह रहे हैं कि मुझे वह पाप लगे जो माता- पिता पुत्र का वध करने वालों को लगता है, जो गाय की गोठ व ब्राह्मणों के मोहल्ले में आग लगाने वाले को लगता है, जो स्त्री और बालक का वध करने वाले पर लगता है आदि।

भरतजी के कथन के रूप में मानो स्वयं तुलसीजी ही अपना मन्तव्य प्रकट कर रहे हैं। उपर्युक्त उद्धरण में **जे अध तिय बालक बध कीन्हें और लोभी लंपट लोलुपचारा** दो चौपाइयाँ द्रष्टव्य हैं। इनमें से प्रथम चौपाई स्पष्ट ध्वनित कर रही है कि तिय का वध करने वाला महापातकी होता है और उसे पाप लगता है। द्वितीय चौपाई में कहा गया है कि पराई नारी (परदारा) की ओर ताकने वाला भी पापी होता है (ताकने मात्र से ही)। इन दोनों पापों की गणना लघु अपराधों में नहीं, अपितु बड़े-बड़े अपराधों में की गयी है। सिद्ध है कि अपराध जितना बड़ा होगा, दण्ड भी उतना ही बड़ा होगा।

अरण्यकाण्ड में इस कथन को प्रत्यक्ष दिखलाया गया है। श्रीराम सीता स्फटिक शिला पर विराजमान हैं। श्रीराम फूलों के आभूषण बनाकर श्री सीताजी को पहना रहे हैं। यह पूर्णतः और विशुद्ध रूप से दाम्पत्य जीवन का सात्विक चित्रण है। परंतु इन्द्र के पुत्र जयंत ने धृष्टता की। सीताजी के चरण में चोंच मारकर भाग गया। यह दोहरा अपराध था-एक तो नारी का अपमान और दूसरे दाम्पत्य जीवन के अंतरंग क्षणों में अतिक्रमण-मर्यादा का अतिक्रमण । श्रीराम ने उसे तत्क्षण दण्ड दिया और एक सींक का बाण उसके पीछे छोड़ दिया-

**एक बार चुनि कुसुम सुहाए।**

**निज कर भूषन राम बनाए ।।**

**सीतहि पहिराए प्रभु सादर।**

**बैठे फटिक सिला पर सुंदर।।**

**सुरपति सुर धरि बायस बेषा।**

**सठ चाहत रघुपति बल देखा ।।**

**जिमि पिपीलिका सागर थाहा।**

**महामंदमति पावन चाहा ।।**

**सीता चरन चोंच हति भागा।**

**मूढ़ मंदमति कारन कागा। 2**

जयंत नारी का अपमान करके भागा था। अतः उसे दण्ड तो मिलना ही था। ऐसा अपराधी समूचे ब्रह्माण्ड में भी शरण पाने चला जाय, तब भी उसे कोई बचा न सके-राष्ट्र में ऐसा ही होना चाहिए। जयंत की दशा ऐसी ही हुई- **प्रेरित मंत्र ब्रह्मसर धावा।**

**चला भाजि बायस भय पावा ।।**

**धरि निज रूप गयउ पितु पाहीं।**

**राम बिमुख राखा तेहि नाहीं ।।**

**भा निरास उपजी मन त्रासा।**

**जथा चक्र भय रिषि दुर्वासा ।।**

**ब्रह्मधाम सिवपुर सब लोका।**

**फिरा श्रमित ब्याकुल भय सोका ।।**

**काहूँ बैठन कहा न ओही।**

**राखि को सकहि राम कर द्रोही। 43**

नारी का अपमान करने वाले का विरोध ऐसा ही होना चाहिए। उसे अपने घर में भी शरण नहीं मिलनी चाहिए। शरण देना तो दूर, उसे तो जयंत की भाँति बैठने के लिए भी नहीं कहना चाहिए। उपर्युक्त पंक्तियाँ यही ध्वनित करती हैं।

नारद ने जयंत को देखा। जयंत यद्यपि अपराधी था। पर नारद को उस पर दया आ गयी-संत होने के कारण उनका चित्त कोमल जो था। उन्होंने उसे क्षमा प्रार्थना हेतु राम के ही पास भेजा। जयंत श्रीराम की शरण में गया, उनसे अपने अपराध के लिए क्षमायाचना की। श्रीराम ने उसे क्षमा तो कर दिया, परंतु लघु दण्डस्वरूप उसकी एक आँख फोड़ दी-**नारद देखा बिकल जयंता ।**

**लागि दया कोमल चित**

**पठवा तुरत राम पहिं संता ।। ताही।**

**कहेसि पुकारि प्रनत हित पाही ।।**

**आतुर सभय गहेसि पद जाई।**

**त्राहि त्राहि दयाल रघुराई।।**

**अतुलित बल अतुलित प्रभुताई।**

**मैं मतिमंद जान नहिं पाई ।।**

**निज कृत कर्म जनित फल पायउँ।**

**अब प्रभु पाहि सरन तकि आयउँ।।**

**सुनि कृपाल अति आरत बानी।**

**एकनयन करि तजा भवानी।।**

उपर्युक्त समूचे घटनाक्रम पर शिवजी पार्वतीजी से कहते हैं (शिवजी के रूप में स्वयं तुलसी बाबा अपना मत व्यक्त करते हैं) कि ऐसे कुकृत्य के लिए यद्यपि उसका वध किया जाना ही उचित था, परंतु कृपालु होने के कारण श्रीराम ने उसे छोड़ दिया-

**कीन्ह मोह बस द्रोह जद्यपि तेहिं कर बध उचित।**

**प्रभु छांड़ेउ करि छोह को कृपाल रघुबीर सम। 15**

बालि वध के प्रसंग में गोस्वामीजी ने इसी नीति को प्रश्रय दिया है। बलशाली होने के कारण बालि ने अपने अनुज सुग्रीव की पत्नी का हरण कर लिया-

**रिपु सम मोहि मारेसि अति भारी।**

**हरि लीन्हेसि सर्बसु अरु नारी। 16**

इस कुकृत्य का दण्ड बालि को मिला। श्रीराम ने उसका वध कर दिया और उसके वध का कारण भी बता दिया कि छोटे भाई की पत्नी, बहिन और पुत्रवधू इन्हें कोई भी यदि बुरी दृष्टि से भी देखता है तो उसका वध करने में कोई दोष नहीं है, क्योंकि ये कन्या के समान होती हैं-

**अनुज बघू भगिनी सुत नारी।**

**सुनु सठ कन्या सम ए चारी ।।**

**इन्हहि कुदृष्टि बिलोकइ जोई।**

**ताहि बधें कछु पाप न होई।**

सबसे बड़ा उदाहरण है रावण का। नारी को अपमानित और प्रताड़ित करने का दण्ड उसे अपने कुल सहित समूल नष्ट होने के रूप में मिला। रावण की पत्नी मंदोदरी ने रावण को बहुत प्रकार से समझाया कि सीता को वापस दिये बिना तुम्हारा कल्याण नहीं होगा-

**दूतिन्ह सन सुनि पुरजन बानी। मंदोदरी अधिक अकुलानी ।।**

**रहसि जोरि कर पति पग लागी। बोली बचन नीति रस पागी ।।**

**कंत करष हरि सन परिहरहू।**

**मोर कहा अति हित हियँ धरहू।।**

**समुझत जासु दूत कई करनी।**

**स्त्रवहिं गर्भ रजनीचर घरनी।।**

**तासु नारि निज सचिव बोलाई।**

**पठवहु कंत जो चहहु भलाई।।**

**तव कुल कमल बिपिन दुखदाई।**

**सीता सीत निसा सम आई ।।**

**सुनहु नाथ सीता बिनु दीन्हें।**

**हित न तुम्हार संभु अज कीन्हें।**

न केवल मंदोदरी, अपितु विभीषण भी रावण को समझाता है कि पराई स्त्री को चौथ के चन्द्रमा की भाँति त्यागने में ही भलाई है-

**जो कृपाल पूँछिहु मोहि बाता।**

**मति अनुरूप कहउँ हित ताता ।।**

**जो आपन चाहै कल्याना।**

**सुजसु सुमति सुभ गति सुख नाना।।**

**सो परनारि लिलार गोसाई।**

**तजउ चउथि के चंद कि नाई। 9**

उपर्युक्त पंक्तियाँ स्पष्ट ध्वनित करती हैं कि शुभ यश, सुमति, शुभ गति और नाना प्रकार के सुख उसे ही प्राप्त हो सकते हैं जिसका अनुराग पराई स्त्री में नहीं है। यही भारतीय परंपरा है और समाज परिवार के सुख-शांति का मूल भी यही है। इन पंक्तियों के द्वारा गोस्वामीजी ने यही संदेश देने का प्रयास किया है।

**(ग) अन्ततः**

जिस समाज में नारी को यथोचित सम्मान प्राप्त नहीं होता, उस समाज काशीघ्र पतन हो जाता है। चूँकि पुरुष नारी की अपेक्षा अधिक बलशाली होता है, अतः यह उसका अनिवार्य कर्तव्य हो जाता है कि वह नारी के सम्मान की रक्षा करे। 'रामचरितमानस' में जटायु का प्रसंग अत्यंत मार्मिक है। रावण सीता का हरण करके ले जा रहा है। जिस प्रकार सीता विलाप कर रही हैं, वह, नारी की असहायता का द्योतक है। ऐसा विलाप सुनकर कठोर-से-कठोर हृदयधारी भी द्रवित हो उठेगा-

**हा जग एक बीर रघुराया। केहिं अपराध बिसारेहु दाया।।**

**आरति हरन सरन सुखदायक। हा रघुकुल सरोज दिननायक ।।**

**हा लछिमन तुम्हार नहिं दोसा। सो फल पायउँ कीन्हेउँ रोसा ।।**

**बिबिध बिलाप करत बैदेही।**

**भूरि कृपा प्रभु दूरि सनेही ।।**

**बिपति मोरि को प्रभुहिं सुनावा।**

**पुरोडास चह रासभ खावा ।।**

**सीता कै बिलाप सुनि भारी।**

**भए चराचर जीव दुखारी। 50**

जटायु पक्षी है-माँसाहारी पक्षी। पर एक नारी का कातर स्वर उसे विचलित कर देता है। वह रावण के बल को जानता है और उसकी अपेक्षा अपनी दुर्बलता को भी जानता है। जटायु यह भी जानता है कि रावण की शठता को रोकने का आशय उसकी स्वयं की मृत्यु है। फिर भी वह एक नारी की अस्मिता की रक्षार्थ रावण को चुनौती देता है-

**गीधराज सुनि आरत बानी।**

**रघुकुलतिलक नारि पहचानी ।।**

**अधम निसाचर लीन्हें जाई।**

**जिमि मलेछ बस कपिला गाई ।।**

**सीते पुत्रि करसि जनि त्रासा।**

**करिहउँ जातुधान कर नासा ।।**

**धावा क्रोधवंत खग कैसें।**

**छूटइ पबि परबत कहुँ जैसे ।।**

**रे रे दुष्ट गढ़ किन होही।**

**निर्भय चलेसि न जानेहि मोही।।**

**आवत देखि कृतांत समाना।**

**फिरि दसकंधर कर अनुमाना ।।**

**की मैनाक कि खगपति होई।**

**मम बल जान सहित पति सोई ।।**

**जाना जरठ जटायु एहा।**

**मम कर तीरथ छाँड़िहि देहा।।**

**सुनत गीध क्रोधातुर धावा।**

**कह सुनु रावन मोर सिखावा ।।**

**तजि जानिकिहि कुसल गृह जाहू।**

**नाहिं त अस होइहि बहुबाहू।**

परंतु जटायु की चेतावनी और धमकी का रावण पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। रावण जटायु की बात का कोई उत्तर भी नहीं देता। रावण की इस धृष्टता पर जटायु अत्यधिक क्रुद्ध हो जाता है और रावण से भिड़ जाता है। रावण उसे मरणासन्न कर देता है-

**उतरू न देत दसानन जोधा ।**

**तबहिं गीध धावा करि क्रोधा ।।**

**धरि कच बिरथ कीन्ह महि गिरा।**

**सीतहिं राखि गीध पुनि फिरा ।।**

**चोचन्ह मारि बिदारेसि देही।**

**दंड एक भइ मुरुछा तेही ।।**

**तब सक्रोध निसिचर खिसिआना।**

**काढ़ेसि परम कराल कृपाना ।।**

**काटेसि पंख परा खग धरनी।**

**सुमिरि राम करि अद्भुत करनी।**

एक पक्षी अपनी सामर्थ्य पर महाबलशाली रावण से टकराता है, अन्याय का विरोध करता है, नारी की अस्मिता बचाने स्वयं प्राणों की आहुति दे देता है। हम मनुष्य होकर भी क्या गिद्ध जैसे पक्षी से भी निम्न कोटि के हैं? नारी की रक्षार्थ क्या हम अन्यायियों-अत्याचारियों पर जटायु जैसे घातक वार नहीं कर सकते ? गोस्वामी तुलसीदास जी के 'रामचरितमानस' में नारी अस्मिता की स्थापना और सुरक्षा तथा शूर्पणखा जैसी पशुवत् आचरण करने वाली 'पशु नारी को ताड़ित करने का संदेश है। तुलसी बाबा का नारी विषयक यही दृष्टिकोण है।

अंततः डॉ. परशुराम शुक्ल विरही' के शब्दों में "प्रत्येक कवि युग चेतना से प्रभावित होता है और उसे प्रभावित भी करता है। तुलसीदास जी की नारी भावना में इस बात को स्पष्टतः से देखा जा सकता है। उनकी मूल चेतना नारी के प्रति सम्मान की भावना से परिपूर्ण है। "53

## संदर्भ :


1. रामचरितमानस: तुलसीदास, (बालकाण्ड 84/1-4)

2. वही, (बालकाण्ड 134/1-3)

3. वही, (बालकाण्ड 135/4, 136/1-3)

4. वही, (बालकाण्ड 143)

5. रामचरितमानस तुलसीदास, (बालकाण्ड 145/4)

6. वही, (बालकाण्ड 149/2)

7. वही, (बालकाण्ड 151/4)

8. मानस के लघु प्रसंगों में नारी डॉ. लखनलाल खरे, पृ. 18

9. रामचरितमानस: तुलसीदास, (बालकाण्ड 192/1)

10. वही, (बालकाण्ड 194/1)

11. वही, (बालकाण्ड 208/3)

12. मानस के लघु प्रसंगों में नारी डॉ. लखनलाल खरे, पृ. 19

13. रामचरितमानस: तुलसीदास, (बालकाण्ड 210)

14. वही, (बालकाण्ड 210/1)

15. वही, (अयोध्याकाण्ड 57)

16. वही, (अयोध्याकाण्ड 66/4)

17. मानस के लघु प्रसंगों में नारी डॉ. लखनलाल खरे, पृ. 19

18. रामचरितमानस तुलसीदास, (अयोध्याकाण्ड 69/1, 3)

19. वही, (अयोध्याकाण्ड 70/1, 2)

20. वही, (अयोध्याकाण्ड 73/1, 2)

21. वही, (अयोध्याकाण्ड 74/1-4)

22. मानस के लघु प्रसंगों में नारी डॉ. लखनलाल खरे, पृ. 20

23. रामचरितमानस तुलसीदास, (अयोध्याकाण्ड 115/1-4, 116/1-4, 117/1, 2

24. वही, (अरण्यकाण्ड 23/1-3)

25. मानस के लघु प्रसंगों में नारी डॉ. लखनलाल खरे, पृ. 21

26. रामचरितमानस: तुलसीदास, (अरण्यकाण्ड 28/1, 2)

27. मानस के लघु प्रसंगों में नारी डॉ. लखनलाल खरे, पृ. 21

28. रामचरितमानस तुलसीदास, (अरण्यकाण्ड 34/1, 2)

29. वही, (किष्किंधाकाण्ड 10/1, 2)

30. वही, (किष्किंधाकाण्ड 24)

31. वही, (किष्किंधाकाण्ड, 24/2-4, 25)

32. मानस के लघु प्रसंगों में नारी डॉ. लखनलाल खरे, पृ. 21

33. रामचरितमानस: तुलसीदास, (सुंदरकाण्ड 8/1-3)

34. वही, (सुंदरकाण्ड 8/3-5)

35. वही, (सुंदरकाण्ड 10/1)

36. वही, (सुंदरकाण्ड 10/1-4)

37. वही, (सुंदरकाण्ड 11/1-3)

38. वही (सुंदरकाण्ड 35-38)

39. वही (लंकाकाण्ड 107/7. 108)

40. वही, (लंकाकाण्ड 108/104)

41. यही. (अयोध्याकाण्ड 166/2-4, 167/1. 2)

42. रामचरितमानसः तुलसीदास (अरण्यकाण्ड 1/1-4)

43. वही, (अरण्यकाण्ड 1/1-3)

44. वही, (अरण्यकाण्ड 1/5-7)

45. वही. (अरण्यकाण्ड 2)

46. वही, (किष्किंधाकाण्ड 5/6)

47. वही, (किष्किंधाकाण्ड 8/4)

48. वही, (सुंदरकाण्ड 35/2-5)

49. वही, (सुंदरकाण्ड 37/2, 3)

50. वही, (अरण्यकाण्ड 28/1-3)

51. वही, (अरण्यकाण्ड 28/4-8)

52. वही, (अरण्यकाण्ड 28/9-11)

53. तुलसीदास का चिंतन डॉ परशुराम शुक्ल विरही, पृ.92